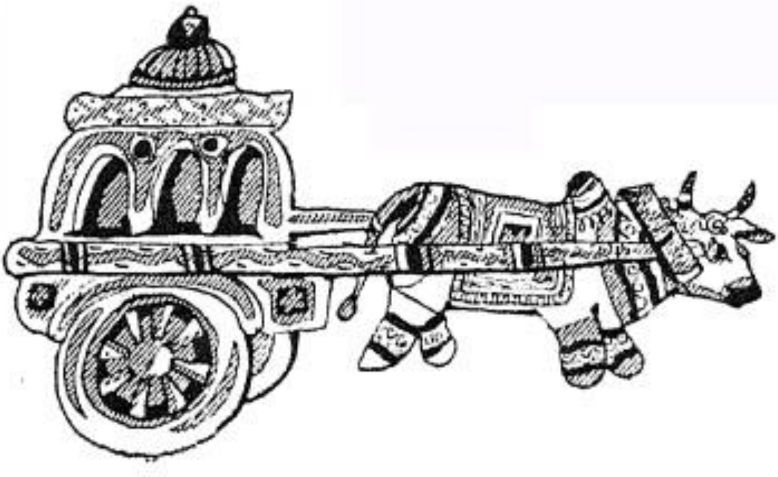
मृच्छकटिक

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक एक हिंदी रूप

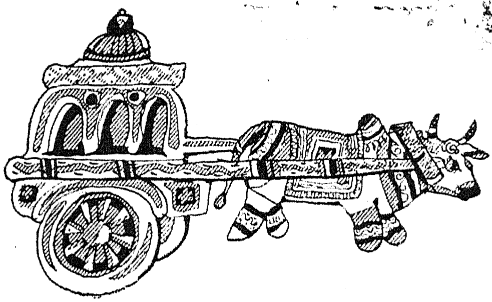


डॉ. रांगेय राघव

1957

मृच्छकटिक

[संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'मृच्छकटिक' का हिन्दी रूप]



अनुवादक : डा० रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य : तीन रुपया
प्रथम संस्करण : सितम्बर १९५७
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

भूमिका

मृच्छकटिक का अर्थ है मिट्टी की गाड़ी। आधुनिक साहित्य में भी पुस्तक का ऐसा शीर्षक रखा जाता है। मृच्छकटिक संस्कृत का नाटक है। इसमें दो भाषाओं का प्रयोग है, जैसा कि प्रायः और संस्कृत के नाटकों में है। राजा, ब्राह्मण और पढ़े-लिखे लोग संस्कृत बोलते हैं, और स्त्रियाँ और नीचे तबके के लोग प्राकृत। इससे प्रगट होता है कि जब यह नाटक लिखे गये थे तब संस्कृत जनभाषा नहीं थी, ऊँचे तबके के लोगों की भाषा रह गई थी, लेकिन उसे सब लोग आसानी से समझ लेते थे। अगर यह माना जाये कि यह नाटक केवल राजदरबारों में होते थे, तो वहाँ पढ़े-लिखे लोगों में खाली संस्कृत से ही काम चल सकता था। वे फिर प्राकृत का प्रयोग ही नहीं करते। मृच्छकटिक एक पुराना नाटक है। बाद के युग में भी कवियों, नाटककारों ने पुरानी परंपरा को ही चलाया।

मृच्छकटिक को राजा शूद्रक ने लिखा था। वह बड़ा कवि था। कुछ लोग कहते हैं, शूद्रक कोई था ही नहीं, एक कल्पित पात्र है। परन्तु पुराने समय में शूद्रक कोई राजा था इसका उल्लेख हमें स्कंदपुराण में मिलता है। भास नामक कवि ने एक नाटक लिखा है जिसका नाम 'दरिद्र चारुदत्त' है। दरिद्र चारुदत्त भाषा और कला की दृष्टि से मृच्छकटिक से पुराना नाटक है। निश्चयपूर्वक शूद्रक के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। बाण ने अपनी 'कादम्बरी' में राजा शूद्रक को अपना पात्र बनाया है, पर यह नहीं कहा कि वह कवि भी था। बाण का समय छठी शती है। मेरा मत है कि शूद्रक कोई कवि था, जो राजा भी था। वह बहुत पुराना था। परन्तु कालिदास के समय तक उसे प्रधानता नहीं

दी गई थी, या कहें कि जिस कालिदास ने सौमिल्ल, भास और कविपुत्र का नाम अपने से पहले बड़े लेखकों में गिनाया है, उसने सबकी सूची नहीं दे दी थी। शूद्रक का बनाया नाटक पुराना था जो निरंतर संपादित होता रहा और बाद में प्रसिद्ध हो गया। हो सकता है वह भास के बाद हुआ हो। भास का समय ईसा की पहली या दूसरी शती माना जाता है। मृच्छकटिक में दो कथाएं हैं। एक चारुदत्त की, दूसरी आर्य्यक की। गुणाढ्य की बृहत्कथा में गोपाल दारक-आर्य्यक के विद्रोह की कथा है। बृहत्कथा अपने मूल रूप में पैशाची भाषा में 'बड्डकहा' के नाम से लिखी गई थी। इससे प्रगट होता है कि यह नाटक ईसवी पहली शती या दूसरी शती का है।

यह नाटक संस्कृत साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इसमें—

(१) गणिका का प्रेम है। विशुद्ध प्रेम, धन के लिये नहीं, क्योंकि वसंतसेना दरिद्र चारुदत्त से प्रेम करती है। गणिका कलाएं जानने वाली ऊँचे दर्जे की वेश्याएं होती थीं, जिनका समाज में आदर होता था। ग्रीक लोगों में ऐसी ही 'हितायरा' हुआ करती थीं।

(२) गणिका गृहस्थी और प्रेम की अधिकारिणी बनती है, वधू बनती है, और कवि उसे समाज के सम्मान्य पुरुष ब्राह्मण चारुदत्त से ब्याहता है। ब्याह कराता है, रखैल नहीं बनाता। स्त्री-विद्रोह के प्रति कवि की सहानुभूति है। पाँचवें अङ्क में ही चारुदत्त और वसंतसेना मिल जाते हैं, परन्तु लेखक का उद्देश्य वहीं पूरा नहीं होता। वह दसवें अङ्क तक कथा बढ़ा कर राजा की सम्मति दिलवा कर प्रेमपात्र नहीं, विवाह कराता है। वसंतसेना अंतःपुर में पहुँचना चाहती है और पहुँच जाती है। लेखक ने इरादतन यह नतीजा अपने सामने रखा है।

(३) इस नाटक में कचहरी में होने वाले पाप और राजकाज की पोल का बड़ा यथार्थवादी चित्रण है, जनता के विद्रोह की कथा है।

(४) इस नाटक का नायक राजा नहीं है, व्यापारी है, जो व्यापारी-वर्ग के उत्थान का प्रतीक है।

यह इसकी विशेषताएं हैं। राजनीतिक विशेषता यह है कि इसमें क्षत्रिय राजा बुरा बताया गया है। गोप-पुत्र आर्य्यक—एक ग्वाला है, जिसे कवि

राजा बनाता है। यद्यपि कवि वर्णाश्रम को मानता है, पर वह गोप को ही राजा बनाता है। मेरा मत है कि यह मूलकथा पुरानी है और संभवतः यह घटना कोई वास्तविक घटना है जो किंवदंती में रह गई। दासप्रथा के लड़खड़ाते समाज का चित्रण बहुत सुंदर हुआ है, और यह हमें चाणक्य के समय में मिलता है, जब 'आर्य्य' शब्द 'नागरिक' (Roman Citizen) के रूप में प्रयुक्त मिलता है। हो सकता है, कोई पुरानी किंवदंती चाणक्य के बाद के समय में इस कथा में उतर आई हो। बुद्ध के समय में व्यापारियों का उत्कर्ष भी काफ़ी हुआ था। तब उज्जयिनी का राज्य अलग था। कोसल का अलग। यहाँ भी उज्जयिनी का वर्णन है। एक जगह लगता है कि उस समय भी भारत की एकता का आभास था, जब कहा गया है कि सारी पृथ्वी आर्य्यक ने जीत ली—वह पृथ्वी जिसकी कैलास पताका है।

देखा जाये तो कवि यथार्थवादी था और निष्पक्ष था। उसने सबकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दिखाई हैं। और बड़ी गहराई से चित्रण किया है। यही उसकी सफलता का कारण है।

मृच्छकटिक की कथा का स्थान उज्जयिनी है। हमें इसमें चातुर्वर्ण्य का समाज मिलता है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मणों का मुख्य काम पुरोहिताई था। पर वे राजकाज में भी दिलचस्पी लेते थे और मुझे जो इस कथा में एक बड़ी गंभीर बात मिलती है वह यह है कि यहाँ ब्राह्मण, व्यापारी और निम्नवर्ण मिल कर मदांध क्षत्रिय राज्य को उखाड़ फेंकते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है और फिर सोचने की बात यह है कि इस कथा का लेखक राजा शूद्रक माना जाता है जो क्षत्रियों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह क्या प्रगट करता है ? यह तो स्पष्ट ही है कि प्रस्तावना शूद्रक की मौत के बाद लिखी गई है, क्योंकि स्वयं उसके जल कर मरने का वर्णन हमें मिलता है। इसका मतलब है कि यह नाटक लेखक के मरने के बाद प्रसिद्ध हुआ था, पहले नहीं। इससे प्रगट होता है कि नाटक की मूलकथा उस समय की है जब आभीर जैसी विदेशी जाति बाहर से आ कर भारत में बस चुकी थी और आभीर और गोप भारत में हिलमिल गये थे। महाभारत से प्रगट होता है कि गोप—ग्वाले भारत में पहले भी थे। श्रीकृष्ण के अंतिम काल में आभीरों ने आक्रमण किया था।

उन्होंने यादवगण जीता था। यादवगण द्वारका की तरफ़ था। द्वारका गुजरात की ओर थी। यह आभीर उसी तरफ़ आ कर बस गये थे। वहीं आभीर गोपों से मिलमिला गये। इन्हीं को बाद में अहीर कहा गया। मैं जो कहता हूँ कि यह गोप शब्द आभीर के लिये आया है, इसका कारण यही है कि गोप तब तक 'क्षत्रिय' नहीं माने गये थे। बाद में सम्भवतः मान लिये गये थे, क्योंकि आर्य्यक के राजा हो जाने के बाद ऐसा हो जाना कठिन नहीं था। मूल क्षत्रिय मदांध थे और ब्राह्मणों पर भी अत्याचार करते थे। यह तो निस्संदेह सत्य है कि मूल क्षत्रियों के 'गणतंत्रवाद', 'ब्राह्मण-विरोधी स्वभाव' के कारण जनता और प्रायः ब्राह्मणगण—(सिवाय यज्ञ की दक्षिणा लेने वालों को छोड़ कर)—विरुद्ध थे। उन्होंने कई बाहरी जातियों को मान्यता दी थी। ऐसा ही विद्रोह कृष्ण ने यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों के विरुद्ध गोवर्द्धन पूजा करा कर कंस के विरुद्ध किया था। स्पष्ट ही हम गोप-पुत्र आर्य्यक को राजा बनते देखते हैं और ब्राह्मण शर्विलक उसे राजा बनाने को तख़्ता पलटता है। चारुदत्त भी उसका सहायक है। राजा पालक अत्याचारी है। सब उससे अप्रसन्न हैं। आर्य्यक उसे उखाड़ता है तो उसकी इन्द्र से तुलना की जाती है। वह कुल और मान का रक्षक माना जाता है। वह ब्राह्मणों को अनुष्ठान में लगने वाली शासन-व्यवस्था स्थापित करता है। शूद्रक संभवतः कोई गोप राजा ही था; जिसने चारुदत्त ब्राह्मण और आर्य्यक की कथा मिला दी थी। भास ने केवल ब्राह्मण कथा को लिखा था। शूद्रक ने गोप-उत्थान भी लिखा। परन्तु उसके मरने के बाद ही नाटक प्रसिद्ध हुआ। गोप था अतः नाम शूद्रक था। बाद में क्योंकि गोप क्षत्रिय भी माने गये, वह भी क्षत्रिय मान लिया गया। आज भी सारे अहीर अपने को यादव क्षत्रिय ही मानते हैं। अर्थात् यह सोचना कि गोप क्षत्रिय बनने के प्रयत्न में थे, नितांत संगत है और अभी तक भारत में उच्च वर्ण बनने के प्रयत्न में हमें कई निम्नवर्ण मिलते हैं। प्राचीन समय में भी यह बराबर चलता था। धंधा बदल जाने से गणों के क्षत्रिय अग्रवाल, जैसवाल बन कर बनिये बन गये। परवर्ती हूण राजा अपने को क्षत्रिय कहने लगे। रुद्रदामन जैसे शक अपने को क्षत्रिय मानते थे। मेरी बात पर विचार करते समय कथा के मूल समय और कथा के लिखे जाने के समय का

भेद नहीं भूलिये। एक पुराना है, दूसरा बाद का। बाद के में भी पुराने के कई चिह्न हैं, जैसे वैष्णवों द्वारा बाद में संपादित महाभारत में मूलमहाभारत के कई चिह्न रह गये हैं। पुरानी कथा का केन्द्र है उज्जयिनी। वह इतना बड़ा नगर है कि पाटलिपुत्र का संवाहक उसकी प्रसिद्धि सुनकर बसने को, धंधा प्राप्त करने को, आता है। उस समय वह पाटलिपुत्र को महानगर नहीं कहता। इसका मतलब है कि उस समय पाटलिपुत्र से अधिक महत्त्व उज्जयिनी का था। स्पष्ट ही पाटलिपुत्र बुद्ध के समय में पाटलिगाम (ग्राम) था, जबकि उज्जयिनी में महासेन चण्ड प्रद्योत का समृद्ध राज्य था। दूसरी प्राचीनता है कि इसमें दास प्रथा बहुत है। दास-दासी धन दे कर आज़ाद कर लिये जाते थे। उस समाज में गणिका भी वधू बन जाती थी। यह सब बातें ऐसे समाज की हैं, जहाँ ज्यादा कड़ाई नहीं मिलती, जो बाद में चालू हुई थी। बल्कि कवि ने गणिका को वधू बना कर समाज में एक नया आदर्श रखा है। उसमें विद्रोह की भावना है। अत्याचारी को वह पशु की तरह मरवाता है, स्त्री को ऊँचा उठाता तथा दास स्थावरक को आज़ाद कराता है। यों हम कह सकते हैं कि यह नाटक जो कि शास्त्रीय शब्दों में प्रकरण है—बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। कौन जानता है ऐसे न जाने कितने सामाजिक नाटक काल के गाल में खो गये। हूणों से ले कर तुर्कों तक के विध्वंसों ने न जाने कितने ग्रन्थ-रत्न जला डाले!

तो हम जिन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं वह हमें एक नये प्रकाश की ओर ले जाते हैं और इस दृष्टिकोण से हमें इस नाटक का महत्त्व कहीं अधिक लगता है।

इस प्रकार लेखक, रचनाकाल, सामाजिक परिस्थिति, आदि को देखने पर हमें ज्ञात होता है कि मृच्छकटिक नाटक प्राचीन और परवर्ती संपादन का फल है। बाद के युग में नाटक का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं रहा, और सामाजिक बंधन तोड़ने में उसका स्वर भी इतना स्पष्ट और मुखर नहीं रहा। आगे के नाटकों में हमें ब्राह्मणों का सम्मान अधिक मिलता है, जब कि मृच्छकटिक में हम ब्राह्मण मैत्रेय को गणिका वसंतसेना को पहले नमस्कार करते देखते हैं। परवर्त्ती सामाजिक चित्रणों में यदि हमें ब्राह्मण की पोल मिलती है, तो उसका दर्जा कुछ अधिक उठा हुआ पाते हैं।

: २ :

पुराने समय में मृच्छकटिक खेला जाता था। यह केवल पढ़ने का ग्रंथ नहीं था। परन्तु यह खेला कैसे जाता होगा ? अभी रूस में मृच्छकटिक नाटक के आधार पर 'श्वेतकमल' नामक नाटक लिखा गया और खेला गया। उसमें इतना बड़ा रंगमंच बनाया गया कि गाड़ी भी रंगमंच पर ही आ गई। इससे प्रगट होता है कि मूल नाटक जब खेला गया था तब भी रंगमंच काफ़ी बड़ा हुआ करता था। कई जगह कवि कहता है—निर्दिष्ट स्थान पर अमुक का प्रवेश। इसका मतलब है कि स्टेज इतना बड़ा होता था कि कई लोग उस पर आ सकते थे और अलग-अलग हिस्सों में खड़े हुआ करते थे। तो क्या पर्दों का प्रयोग नहीं होता था ? क्या तब शेक्सपियर के युग के नाटकों का-सा हाल था ? कहीं यवनिका शब्द नहीं मिलता। सब 'प्रवेश' करते हैं, सब 'प्रस्थान' करते हैं। यूरोपीय लोग कहते हैं कि 'यवनिका' शब्द 'यवन' से बना है; अर्थात् ग्रीक लोगों ने भारत के नाट्यगृहों में पर्दों का प्रयोग प्रारंभ किया। किन्तु भारत में पर्दों का प्रयोग करने वाले यवन, यूनान में पर्दों का प्रयोग नहीं करते थे। उनका नाट्यमंच बीच में होता था और लोग चारों ओर बैठते थे। उनका मंच ऊपर से खुला होता था। यूरोप में तो १६वीं सदी तक मंच पर पर्दे नहीं थे। यवनिका तो जवनिका शब्द से बना है। जवनिका का अर्थ है जल्दी गिरने वाली। इसका अर्थ है कि पर्दे और भी होते थे। और 'अपटी क्षेपेण' बिना पर्दा गिराये-हटाये—का प्रयोग जो मिलता है, उसका मतलब ही यह है कि छोटा पर्दा भी होता था। यह जो नाटक में मिलता है कि—'तब शैय्या पर सोई वसंतसेना का प्रवेश,' या 'आसन पर बैठे चारुदत्त का प्रवेश,' इसका क्या अर्थ हो सकता है ? या तो मंच में घूमने वाले क्षेत्र (Revolving Stage) थे या पर्दे खींचकर दृश्य खोला जाता था। तो साफ़ होता है कि छोटे पर्दे हुआ करते थे और उनका प्रयोग भी होता था। परन्तु हर एक अङ्क में वैसा नहीं मिलता। एक अङ्क (दसवाँ) है जिसमें पथ के दृश्य हैं। पाँच जगहों पर तो घोषणा होती है। एक जगह वसंतसेना और संवाहक निकलते हैं, एक जगह महल की वीथि की खिड़की से स्थावरक कूदता है, एक जगह शकार महल की छत पर चढ़ कर देखता है, एक जगह धूता जल रही

है। और यह सब एक ही मंच पर होता है। स्थावरक ऊँचे से चिल्लाता है और कहता है कि कोलाहल के कारण लोग मेरी बात नहीं सुनते। तो फिर दर्शक कैसे सुनते ? इसका अर्थ यह है जब स्थावरक बोलता है तब अन्य पात्र नहीं बोलते। सन्नाटा छा जाता है, पर पात्र मंच के किसी कोने में रहते हैं। स्थावरक के लिये महल या छत या खिड़की कुछ नहीं है। वह तो केवल बोलता है। अगर 'एक्शन' अर्थात् कार्य होता तो वह अपने किये हुए को बोलता क्यों जाता ? ऐसे ही विदूषक वसंतसेना के आठ प्रकोष्ठों को देखता है। उतना सब रंगमंच पर कैसे हो सकता है ? स्पष्ट ही पात्र थोड़ा-सा चलता था और बोलने लगता था। दर्शकों को कल्पना करनी पड़ती थी। ऐसी स्वतंत्रताएं पुराने समय में नाटक में प्रचलित थीं। मुकदमे के दृश्य में वीरक बाहर जाता है और झट से भीतर आकर कहता है कि मैं तो पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में हो आया। आज का दर्शक ऐसी बात को नहीं मान सकता। फिर वसंतसेना वर्षा में जाती है। रास्ते भर के बाद चारुदत्त का घर आता है। वह सब भी बस कल्पना की चीज़ें हैं। हम इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :

(१) पर्दे होते थे, पर वे बहुत काम नहीं देते थे।

(२) कुछ सेट् (Set) भी बनते थे, पर बहुत नहीं।

(३) अधिकांश काम बोल कर प्रगट किया जाता था, दर्शकों को कल्पना करनी पड़ती थी।

(४) रंगमंच बहुत काफी बड़ा होता था। जब कवि लिखता है कि 'गाड़ी पर चढ़कर पर्दा खोलकर देखता है,' तब वह ऐक्शन यानी कार्य्य स्पष्ट लिखता है। इसका अर्थ है गाड़ी सचमुच आती थी। पर जब वह लिखता है—'मैं महल की खिड़की से कूदूँ। यह लो कूद गया।' तब वह केवल कल्पना जगाता है। काफ़ी जगह होती थी, जिसमें काफी घूमने की गुंजायश होती थी।

(५) रंगमंच एक ओर से खुला होता था, क्योंकि उसमें 'नेपथ्य' हुआ करता था।

(६) जब पात्रों का एक सेट बोलता था, तब बाकी लोग चुप खड़े रहते थे। अवश्य ही आज के दर्शक को यह विचित्र लगेगा। परन्तु यह युग की रुचि का भेद है। पहले लोग नाटक में काव्य ढूँढ़ते थे। इसलिए नट और नटी को

महत्त्व नहीं दिया जाता था । अब के लोग समय, पात्र और स्थान के यथार्थ चित्रण देखते हैं, और वे नाटक में काव्य की परवाह नहीं करते, तभी आज के रंगमंच में नट और नटी की काफी पूछ होती है ।

आज के युग में यदि मृच्छकटिक खेला जाये तो पर्दे काफी लगाने होंगे और अच्छा यही होगा कि प्रत्येक अंक को अलग-अलग दृश्यों में कथावस्तु के हिसाब से बाँट लिया जाये । हमने अपने अनुवाद में संस्कृत के गद्य-पद्य के नाटक को केवल गद्य में कर दिया है । हमारा उद्देश्य शूद्रक की रचना से परिचय कराना था । किन्तु जो खेलना चाहें, वे इसके अपने आप बोलने वाले पक्ष को कम करके एक्शन बढ़ा कर कई दृश्यों में इसे बाँट कर खेल सकते हैं । वर्षा में वसंतसेना की यात्रा को चारुदत्त-विदूषक के संवाद के रूप में रखा जा सकता है, ताकि यात्रा नहीं दिखानी पड़े । चारुदत्त की अंतिम यात्रा में समूह को बार-बार स्टेज से इधर से उधर निकाल कर, घुमाया जा सकता है । परन्तु फिर भी यह कार्य्य बहुत संभल कर करने का है । अच्छा यही है कि पुराने को उसी रूप में देखा जाये ताकि उसका वातावरण बना रहे, या एक नया नाटक उसी कथावस्तु पर लिख लिया जाये जैसे रूसियों ने 'श्वेतकमल' लिख कर किया ।

: ३ :

नाटक का नाम मृच्छकटिक अर्थात् मिट्टी की गाड़ी है । नायक है चारुदत्त, नायिका है वसंतसेना, फिर नाम मिट्टी की गाड़ी क्यों रखा गया ? पूरी कथा में मिट्टी की गाड़ी का नाम छठे अङ्क में आता है और मामूली-सी बात लगती है । परन्तु वास्तव में यह बात नहीं है । मिट्टी की गाड़ी ही कथा को बदलती है । न मिट्टी की गाड़ी की बात आती न वसंतसेना अपने गहने देती, न मौके पर विदूषक की काँख में दबे गहने नीचे गिरते, न चारुदत्त का अपराध प्रमाणित होता । परन्तु यह मिट्टी की गाड़ी तो केवल चारुदत्त-कथा का प्राण बन सकती है, फिर आर्य्यक-कथा को इससे क्या संबंध हो सकता है ?

संबंध है । देखा जाये तो सारा प्रकरण गाड़ियों की ही कहानी है । आर्य्यक भी गाड़ी से ही बच पाता है । मानो लेखक कहता है कि जीवन में कोई गाड़ी ठीक जगह पहुँचाती है, कोई गाड़ी गलत जगह । सब कुछ भाग्य का खेल है ।

इसी लिये लेखक कहता है कि वास्तव में जीवन मिट्टी की गाड़ी में ही चलता है। उसका और कोई वाहन नहीं। आदमी सोने की गाड़ी के लिये मचलता है परंतु खेल खिलाती है मिट्टी की गाड़ी ही।

नाटक में भाग्य का हाथ काफ़ी है। और विशेष बात यह है कि पाप-पुण्य का आधार मनुष्य का लोक-परलोक का तीव्र विश्वास है। उस समय वर्गों की विषमता समझने का यह भारतीय प्रयत्न था कि क्यों कोई धनी और क्यों कोई दरिद्र होता है? स्थावरक कहता है कि वह भाग्य के कारण दास है और दास वह पूर्वजन्म के पापों के कारण बना है। अच्छे कर्म करने से इस जन्म में राजा का साला संस्थानक इतनी ऊँची जगह जन्म लेता है। पर वह अविचारी है। चारुदत्त परलोक से डरता है क्योंकि वह अच्छा आदमी है। वास्तव में परलोक का भय उस युग में उच्च वर्गों की निरंकुशता को रोकने के लिये था। उपनिषदों में हम जिस आत्मा के समानतावाद को देखते हैं कि मनुष्य की आत्मामात्र समान है, वह दासप्रथा के तोड़ने में बहुत समर्थ हुई थी। यह इस नाटक से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में प्राचीन दासप्रथा को परलोक की भावना ने ही तोड़ा था। यहाँ दास ऐसे नहीं हैं जैसे रोम में थे। परन्तु यही यह भी स्पष्ट करता है कि यह दासप्रथा के टूटने के परवर्त्ती काल की घटना है। महाभारत में दास के वर्णन में मिलता है, दास जैसे चाहे मारा जा सकता था। इस समय तक समाज काफी प्रगति कर गया था। यह आत्मा की समानता का भाव भारत में मानवतावादी विचारधारा का पुराना पोषक है। हम तभी देखते हैं कि चारुदत्त अंत में बदला नहीं लेता, शकार को क्षमा कर देता है। यह उदात्त भावना हमें काफ़ी गौरवान्वित करती है। किंतु मनुष्य क्या है? उसका तो उत्थान-पतन हुआ करता है। दैव ही यहाँ खेल रहा है। यह खेल गाड़ियों के बदल जाने से है। कवि स्पष्ट कहता है, जब वृद्ध विट कह उठता है कि राजा के साले की जगह स्थावरक और स्थावरक की जगह चेट को होना चाहिये था। वास्तव में देह की मिट्टी की गाड़ी है, जिसमें आत्मा यात्रा कर रही है। गलत मिट्टी में गलत प्राण चल रहे हैं। लेखक ने अपने युग के समाज पर तीखा प्रहार किया है। गणिका में कुलवधू के गुण हैं, न केवल वसंतसेना में, बल्कि मदनिका में भी। इसी लिये नाटक का नाम बहुत ही उचित रखा गया है।

: ४ :

नाटक में एक बात खटकती है। वह यह है कि पालक आर्य्यक को केवल इसलिये बन्दीगृह में डाल देता है कि सिद्ध ज्योतिषियों ने उसके राजा बन जाने की भविष्यवाणी की है। किन्तु इस बात के लिये यह हो सकता है कि मूल-कथा में आर्य्यक कोई विद्रोही था, जिसने पालक के अत्याचार के विरुद्ध स्वर उठाया था। नाटक में वह एक सीधा-सादा गोप है, परन्तु बड़ा सुन्दर पुरुष है। उसमें सब राजा के-से लक्षण हैं। उसे उठा कर पालक पकड़ लेता है। शर्विलक गरीब ब्राह्मण उसे छुड़ाता है। आर्य्यक जंगल में भाग जाता है। उस समय वह बड़ा दयनीय-सा लगता है, परन्तु बाद में शर्विलक के प्रयत्न से वह पालक को मार कर राजा बन जाता है। व्यक्तित्व तो यहां शर्विलक का है जो तख्ता पलटता है, परन्तु मूलकथा सम्भवतः यही नहीं थी। सम्भवतः पालक अत्याचारी था और आर्य्यक विद्रोही। शर्विलक आदि उसके मित्र थे। इन्होंने मिल कर तख्ता पलट दिया। पर क्योंकि प्राचीनकाल में चमत्कारों पर आज से कहीं अधिक विश्वास किया जाता था, यह कथा इस प्रकार आई। शेक्सपियर का मैकबैथ भी तो तीन डायनों के हाथों में ऐसे ही खेलता है। हो सकता है कि जिन सिद्ध ज्योतिषियों ने आर्य्यक के राजा बन जाने की घोषणा की थी, वे सिद्ध भी इसी दल के लोग थे, जिन्होंने घोषणा की होगी कि पालक को ,टाकर आर्य्यक को राजा बनाया जाये। इस प्रकार यह चमत्कार हमारे कथानक में कोई दुरूहता पैदा नहीं करता।

: ५ :

मृच्छकटिक की विशेषता एक यह है कि इसमें दक्षिण भारत का भी उल्लेख काफ़ी है। इसमें सह्यवासिनी देवी का नाम आता है। सह्याद्रि दक्षिण में है। 'दाक्षिणात्य' और 'कर्णाटकलह' शब्द तो वीरक और चंदनक के झगड़े के समय स्पष्ट आये हैं। दक्षिण की भी कई भाषाओं के नाम गिनाये गये हैं। यह उस समाज का चित्रण है जिसमें उत्तर और दक्षिण भारत में काफ़ी सम्बन्ध था। चंदनक दक्षिण से आ कर उज्जयिनी में अच्छी नौकरी पा जाता है। पाटलिपुत्र से भी लोग उज्जयिनी में नौकरी करते थे। सार्थ खूब चलते थे।

क्योंकि सार्थवाह काफ़ी थे। मुहल्ले जातियों के नाम पर बँटे थे—जैसे बनियों का मुहल्ला, श्रेष्ठि चत्वर कहलाता था, परन्तु उसमें केवल बनिये ही रहते हों, ऐसी कोई बात नहीं थी। उसमें आर्य्य चारुदत्त भी रहता था, जो ब्राह्मण था।

ब्राह्मण व्यापार भी करते थे। वैश्य विदेश भी जाते थे। चाण्डाल वध करते थे, किन्तु लेखक ने स्पष्ट बतलाया है कि वे भी श्रेष्ठ हो सकते थे। जन्म से कोई अच्छा-बुरा नहीं होता, कर्म से होता है, आचरण और शील से होता है, लेखक यही कहना चाहता है। कोई भी किसी जगह किसी कुल या जाति में जन्म लेता है। वह वही परपरागत काम करता है, परन्तु क्योंकि काम कोई गन्दा या बुरा नहीं है, वह भी उससे बुरा नहीं हो जाता। बुरा तो वह शील को छोड देने से बन जाता है।

इस समाज में सबको वेद बोलने का अधिकार नहीं था। साधारण प्राकृत लोग (Commoners) वेद नहीं बोल सकते थे, हालाँकि ब्राह्मण गरीबी के कारण चोरी भी करते थे और गणिका के यहाँ अच्छा भोजन देख कर ललचाते भी थे। ऐसा लगता है उस समय खान-पान की छुआछूत इतनी नहीं थी। परन्तु ब्राह्मण वैसे पाँव धुलाने में अपमान समझता था। रात को सड़कों पर निकलना खतरनाक होता था। खुले आम सड़कों पर मार-पीट भी हो जाती थी। गाड़ियों में ज्यादातर बैल ही काम में लाये जाते थे।

उस समय घूंघट का रिवाज था, कितना लम्बा, यह तो पता नहीं, पर वधू सिर ढाँकती थी। वैसे अजन्ता आदि के चित्र बताते हैं कि स्त्रियाँ स्तन तक खुले रखती थीं। वात्स्यायन ने तो कहा है कि यदि घर में किसी स्त्री के कुचों पर नखों के चिन्ह मिलें तो उसे विवाहित मान कर आदर करना चाहिये। वाल्मीकि रामायण, जिसका वर्त्तमान रूप विद्वान लोग ईसवी दूसरी शती पूर्व नियत करते हैं, उसमें राक्षस-वधू मंदोदरी भी पर्देदार थी, ऐसा वह स्वयं रावण की मृत्यु पर विलाप करते समय कहती है कि तुम अवश्य मुझे इस प्रकार उन्मुक्त देख कर दुखी हो रहे होगे; तुम्हारे समय में क्या मैं ऐसे आ सकती थी? अभिज्ञान शाकुन्तल में कालिदास ने भी राजदर्बार में जाने वाली शकुन्तला से घूंघट करवाया है। हो सकता है उस समय 'वध' घूँघट करती हो। 'वधू'

का सम्मान अन्य स्त्रियों की तुलना में सम्भवतः बहुत अधिक था। यद्यपि समाज के प्रतिष्ठित लोग गणिकाओं से सम्बन्ध रखते थे, परन्तु समाज में वह, फिर भी अच्छा नहीं माना जाता था। उन दिनों नैतिक मानदण्ड भी दूसरे ही थे। वसंतसेना भींग कर आती है तो चारुदत्त सबके सामने कहता है कि बूंदें केशों से टपक कर स्तनों पर गिर रही हैं। आजकल ऐसे कौन कह सकता है? फिर वसंतसेना भी बड़े मुखर तरीके से कहती है कि मैं रमण करने जाती हूँ। हो सकता है वधू होने पर वह नहीं कहती, क्योंकि हम धूता के प्रति चारुदत्त को बड़ा ही इज्ज़तदार व्यवहार करते देखते हैं। आखिर कवि ने वसंतसेना को वह इज्ज़त दिला ही दी है। उसने नारी-जीवन की चरम सार्थकता वधू होने में ही स्वीकार की है। घूंघट तो होता था परंतु पर्दा निश्चय ही नहीं था, क्योंकि धूता सबके सामने भी आती है।

जुआ उस समय भी बड़ा प्रचलित खेल था। बड़े-बड़े लोग भी जुआ खेलते थे।

उस समय राजाओं की चार तरह की स्त्रियाँ होती थीं। पहली महिषी यानी पटरानी। दूसरी पालागली यानी बड़े अफ़सर की बेटी। तीसरी परिवक्ती यानी उपेक्षिता-सी पत्नी और चौथी वावाता। यह राजा की प्रिया होती थी। बाकी शादियाँ उसे मजबूरी में कायदों का निर्वाह करने को करनी पड़ती थीं, परन्तु यह वाली शादी वह खुद करता था। संस्थानक को कई बार 'काणेलीमात' कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वह अविवाहित स्त्री का लड़का था। और फिर उसे इस नाम से बुलाया भी जाता था, जिसका वह बुरा नहीं मानता था। इससे प्रगट होता है कि वह रखैल का बेटा था और उसकी बहन पालक की वावाता थी।

उस समय देश में बौद्ध धर्म काफ़ी था। काफ़ी विहार थे, तभी संवाहक को सारे विहारों का कुलपति बनाया गया है। इससे प्र ाट होता है कि मृच्छकटिक की यह संपादित रचना अशोक के बाद की है और इसी लिये उसमें राजा भी यह अधिकार रखता है कि किसी को भी कुलपति चुन दे, जब कि वैसे यह काम राजा का नहीं होना चाहिये। उस समय ब्राह्मण-धर्म अधिक प्रचलित था।

यह प्रगट करता है कि रचना शुंगकाल की होनी चाहिये जब कि ब्राह्मणों का ज़ोर होने लगा था। बौद्धभिक्षु का दर्शन भी अपशकुनकारक माना जाता था। भिक्षुओं को लोग शरीफ़ ही समझते हों, ऐसा भी नहीं रहा था। परंतु लेखक ने बौद्ध और ब्राह्मण दोनों के ही प्रति सहानुभूति दिखाई है। वह अच्छे श्रमण का चित्रण करता है, न कि दिखावा करने वाले का।

किन्तु मृच्छकटिक के रचनाकाल में, या मूलकथा काल में, दोनों में ही कोई भारत भर का एक बड़ा राजा नहीं था। लेखक यह चाहता ज़रूर है कि भारत में एक सम्राट हो, तभी वह आर्य्यक को सारी पृथ्वी का राजा कहता है, और चाहता है कि बुरे श्रमण की जगह किसी अच्छे को राजा ही सब विहारों का कुलपति बना दिया करे। इस दृष्टि से इसके संपादन का समय निश्चय ही शुंगकाल के बाद का है। मेरे मत में मृच्छकटिक का वर्तमान स्वरूप ईसवी पहली और ईसवी पूर्व पहली सदी के बीच का होना चाहिये। मनुस्मृति का वर्त्तमान स्वरूप कौटिल्य के अर्थशास्त्र के बाद संपादित किया गया है। इसका समय लगभग ईसवी पूर्व दूसरी शती है। ब्राह्मण का जो सम्मान हमें नारद, याज्ञवल्क्य और कौटिल्य में कम मिलता है, वह मनु में फिर से दृढ़ किया गया है, ऐसा लगता है। जिस समय दासप्रथा टूटी थी, क्षत्रियों ने उत्कर्ष किया था; ब्राह्मण का मान घट गया था। बाद में ब्राह्मणों ने फिर अपने अधिकारों की रक्षा की थी। इस दृष्टि से भी मृच्छकटिक का समय हमारे द्वारा निर्धारित ही प्रतीत होता है। इस समय हम देखते हैं कि राजा की आज्ञा सर्वोपरि है, जब कि पहले पंचायतों, ग्रामिकों का भी हमें ज़ोर दिखाई देता है।

अन्त में हम यहाँ कहना चाहते हैं कि भाषा के दृष्टिकोण से मृच्छकटिक का बड़ा महत्त्व है। इसमें लौकिक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों का प्रयोग है। सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसंतसेना, उसकी माँ, चेटी, कर्णपूरक, धूता, शोधनक और श्रेष्ठि शौरसेनी प्राकृत बोलते हैं तथा वीरक और चंदनक अवन्तिका प्राकृत। विदूषक प्राच्या प्राकृत बोलता है। शकार, वसंतसेना और चारुदत्त के चेट, भिक्षु, रोहसेन और संवाहक मागधी प्राकृत बोलते हैं। शकार शिकार अपभ्रंश बोलता है। दोनों चाण्डाल-चाण्डाली अपभ्रंश

बोलते हैं। माथुर और द्यूतकर की भाषा ढक्की अपभ्रंश है। निस्संदेह इस नाटक का लेखक अनेक भाषाओं का अधिकारी था।

मृच्छकटिक एक बहुत सुंदर नाटक है, परंतु संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ नाटक नहीं है। यद्यपि नाटकीय दृष्टि से इसमें कमियाँ हैं, परंतु कोई पूर्ण ही हो, ऐसी रचना अभी तक हमें प्राप्त नहीं है।

—रांगेय राघव

पात्र

सूत्रधार : मुख्य नट यानी अभिनेता। डॉयरेक्टर।

चारुदत्त : गरीब ब्राह्मण व्यापारी।

मैत्रेय : चारुदत्त का मित्र, ब्राह्मण, विदूषक।

शकार : श-श बोलता है—स को यों शकार। वैसे है राजा पालक का साला। नाम है संस्थानक।

विट : शकार का नौकर।

चेट : शकार का दास। नाम स्थावरक। बूढ़ा।

वर्द्धमानक : यह चारुदत्त का सेवक है।

संवाहक : चारुदत्त का पुराना नौकर, फिर जुआरी, फिर बौद्धभिक्षु।

माथुर : जुए की सभा का अध्यक्ष-सभिक।

द्यूतकर, दर्दुरक : } जुआरी

कर्णपूरक : वसंतसेना का नौकर। मस्त और तगड़ा।

शर्विलक : मदनिका का प्रेमी। ब्राह्मण। पहले चोर फिर राज्य पलटने वाला।

कुंभीलक : वसंतसेना का दास।

रोहसेन : चारुदत्त का पुत्र।

आर्य्यक : गोप-पुत्र, बंदी, फिर राजा।

वीरक : राजा पालक का सेनापति।

चंदनक : राजा पालक का दूसरा सेनापति। } नगर-रक्षक भी हैं।

शोधनक : न्यायालय का नौकर।

न्यायाधीश, श्रेष्ठि, कायस्थ } अधिकरण यानी न्यायालय के अधिकारीगण। श्रेष्ठि आजकल के जूरर-सा होता था। कायस्थ—पेशकार।

वसंतसेना : गणिका।

वृद्धा : वसंतसेना की माँ।

रदनिका : चारुदत्त की दासी।

धूता : चारुदत्त की पत्नी—वधू—जिसे अब धर्मपत्नी कहते हैं।

मदनिका : वसंतसेना की दासी, शर्विलक की प्रिया।

[विट, चेट, बंधुल, चाण्डाल, चेटी, छत्रधारिणी, वेश्यापुत्र, नटी इत्यादि]

प्रथम अङ्क

नांदी*

पर्य्यंक-ग्रंथि की भाँति सर्पगण बँट कर
कस कर सहज बाँध
वह जो स्थित पद्मासन में है यों अपनी
कटि को और जाँघ,
प्राणादिवायु को रोक लिया
इन्द्रियाँ हुईं व्यापारशून्य
जो तत्त्वज्ञान से मानस में
अनुभव करता है ब्रह्मपूर्ण,
उस शंकर की प्रलयोन्मुख औ'
वह ब्रह्मलग्न शाश्वत समाधि
सब काल आपकी रक्षा कर
रे दूर करे सब आधि व्यधि।

और भी—

नीले बादल-सा शंकर का वह नीलकण्ठ,
आलिंगित करतीं जिसे पार्वती की अति सुंदर भुजा गौर,

---

*नांदी—नाटक के प्रारंभ में प्रार्थना।

बिजली-सी जगमग करतीं नीलम छाँह बीच,
वह करे आपकी रक्षा बनकर चिर जीवन की वरद ठौर।

[**नांदीपाठ के बाद सूत्रधार**]

सूत्रधार : बस-बस ! उपस्थित लोगों की नाटक देखने की इच्छा की तीव्रता को और बढ़ा कर उसे नष्ट कर देना व्यर्थ है। मैं सभ्य लोगों को प्रणाम कर कहता हूँ, कि हम मृच्छकटिक नामक प्रकरण का अभिनय करने वाले हैं। चकोर के-से नयन वाले, गजराज की भाँति चलने वाले, पूर्णचंद्रमा के-से मुख वाले, सुंदर, महाशक्तिशाली और क्षत्रिय-श्रेष्ठ शूद्रक ने इसकी रचना की थी।[1] राजा शूद्रक ऋग्वेद, सामवेद, अङ्कगणित, चौंसठ कलाओं, व्यापार-नियमों तथा हाथी आदि पालने के नियमों और विद्याओं में बड़े निपुण थे। भगवान शंकर की कृपा से उन्होंने अज्ञान रूपी अंधकार का हरण करके दिव्य दृष्टि प्राप्त कर ली थी। अपने पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाकर, बड़े उद्योग से अश्वमेध यज्ञ पूरा करके १०० वर्ष और १० दिन की आयु समाप्त कर राजा शूद्रक अग्नि में प्रविष्ट हो गये। वे संग्राम में बड़े कुशल, जागरूक, वैदिकों में श्रेष्ठ, तपोनिष्ठ और शत्रुओं के हाथी से मल्लयुद्ध करने के बड़े शौकीन थे। राजा शूद्रक के बनाये हुए इस प्रकरण में उज्जयिनी नगरी की कथा है। वहाँ एक व्यापारी ब्राह्मण रहता था। वह युवक था, निर्धन था। उसका नाम था—चारुदत्त। चारुदत्त के गुण ऐसे थे कि वसन्त की शोभा जैसी सुन्दरी वसंतसेना नामक नर्त्तकी उन पर मोहित हो गई थी। राजा शूद्रक ने इस प्रकरण में चारुदत्त और वसंतसेना के सुख और

---

१. बभूव। सूत्रधार स्पष्ट करता है कि नाटककार प्राचीन था।

विलास, नीति की गति, नीचों की दुष्टता तथा होनहार—इन सबको ही वर्णित किया है।

(**घूम कर और देख कर**) अरे ! हमारी संगीतशाला में ऐसा सन्नाटा क्यों है ? कुशीलव[1] न जाने कहाँ चले गये ? (**सोच कर**) ओह समझा ! उसका घर सूना ही लगता है जिसके पुत्र नहीं होता। जिसका कोई गहरा मित्र नहीं, वह घर तो काम का ही नहीं होता। मूर्ख के लिये तो सब दिशाएं सूनी होती हैं। और गरीब के लिये तो सभी कुछ सूना होता है। चलो ! संगीत तो हो चुका। संगीत में लगे-लगे तो तेज़ धूप में सूखे कमल के बीज-सी मेरी आँखें भूख से विचलित हो गई हैं। स्त्री को ही बुलाकर पूछूँ कि कुछ खाने-पीने को भी है या नहीं। अब मुझे संस्कृत छोड़कर प्राकृत में बोलना चाहिये। अरे सुनो तो। देर तक गाते रहने से सूखे कमल के डंठल की तरह मेरे अंग सूख गये हैं। भूख से हालत बिगड़ रही है। स्त्री ने जाने कुछ बनाया भी है या नहीं ? (**घूम कर और देख कर**) यही मेरा घर है। चलूँ तो भीतर। (**अन्दर जा कर और देख कर**) अरे वाह ! यहाँ तो कुछ और ही मामला है ! धोये हुए चावलों के पानी से गली भर गई है। लोहे की कड़ाही की रगड़ से भूमि पर ऐसी बूँदें लग गई हैं जैसे किसी सुंदरी ने साज-सिंगार किया हो ! और पकवानों की आती हुई इस सुगंध ने तो मेरी भूख को और भी बढ़ा दिया है। आज क्या कहीं पुरखों का गाड़ा हुआ धन तो हाथ नहीं लग गया ? या भूख के कारण मुझे ही सारा संसार भात-सा ही दिखाई दे रहा है ! हमारे घर में कुछ

१. नट और चारण—गायक।

भी सुबह का बचा खाना नहीं है। भूख के कारण मेरे तो प्राण निकले पड़ रहे हैं। और यहाँ तो सब नई-नई तैयारियों में लगे हैं। कोई स्त्री मसाला पीस रही है, कोई फूलों की माला गूँथ रही है। (सोच कर) बात क्या है ? अच्छा ! घरवाली को बुला कर ही पूछ न लूँ ? (नेपथ्य की ओर बढ़ कर) आर्य्ये ! सुनती हो!

नटी : (प्रवेश कर) आई, आर्य्यपुत्र !

सूत्रधार : आर्य्ये ! आओ ! आओ !

नटी : आर्य्य ! आज्ञा दें। क्या सेवा करूँ ?

सूत्रधार : आर्य्ये ! अधिक समय तक संगीत में लगा रह कर भूख से तिलमिला उठा हूँ। अब यह कहो, घर में कुछ खाने को है या नहीं ?

नटी : सब कुछ है आर्य्य।

सूत्रधार : क्या है। कहो तो !

नटी : गुड़ में सना अन्न है। घी, दही, भात; आपके देवगण आश्वासन देते हैं कि आर्य्य के भोजन करने योग्य सभी सरस पदार्थ हैं।

सूत्रधार : हमारे घर में सब कुछ है ? यह कैसा परिहास करती हो ?

नटी : (स्वगत) तो मज़ाक ही क्यों न करूँ ? (प्रगट) आर्य्य ! बाजार में तो है ?

सूत्रधार : (क्रोध से) अरी दुष्टे ! तूने तो बाँस के ढेले की तरह उठा कर दे मारा। तो ले तेरी भी आशा ऐसे ही नष्ट होगी, तेरा भी साथ ही साथ नाश हो जायगा।

नटी : आर्य्य ! प्रसन्न हों। मैंने तो परिहास किया था।

सूत्रधार : तो फिर यह सब नई तैयारी किसकी है ? कोई स्त्री मसाला पीस रही है, कोई माला गूँथ रही है और भूमि भी तो पँचरँगे फूलों की मालाओं से सजा रखी है ?

नटी : आर्य्य ! उपवास जो किया है।

सूत्रधार : कौन-सा उपवास ?

नटी : अनुरूप पति पाने वाला उपवास ।

सूत्रधार : तो आर्य्ये ! इस लोक के लिये या परलोक के लिये ?

नटी : आर्य्य, परलोक के लिये !

सूत्रधार : (**क्रोध से**) सज्जनगण ! आप ही देखें। मेरे अन्न को खर्च करके दूसरे लोक के लिये पति खोजा जा रहा है !

नटी : आर्य्य ! प्रसन्न हों। मैं तो इसलिये व्रत कर रही हूँ कि दूसरे जन्म में भी मुझे आप ही पतिरूप में प्राप्त हों।

सूत्रधार : अच्छा ! इस व्रत को बताया किसने है ?

नटी : आप ही के प्रिय मित्र चूर्णवृद्ध ने।

सूत्रधार : (**क्रोध से**) अरे ! वह नीचपुत्र चूर्णवृद्ध ! कब आयेगा वह दिन जब मैं तुझे वैसा ही विदीर्ण हुआ देखूँगा जैसा कि राजा पालक क्रुद्ध हो कर नववधू के सुगंधित केशपाश को छिन्न-भिन्न कर देता है !

नटी : आर्य्य ! इतने क्रुद्ध न हों। यह परलोक का व्रत मैं तो आप ही के लिये कर रही हूँ। (**चरणों पर गिरती है।**)

सूत्रधार : उठो आर्य्ये ! उठो ! बताओ तो सही। यह व्रत किस तरह करना चाहिये !

नटी : हम लोगों के योग्य ब्राह्मण को निमन्त्रण देना चाहिये।

सूत्रधार : अच्छा तो आर्य्ये ! तुम अपने काम में लगो। मैं भी अपने योग्य किसी ब्राह्मण को निमन्त्रण दे कर आता हूँ।

नटी : जैसी आप आज्ञा दें। (**प्रस्थान**)

सूत्रधार : (**घूम कर**) क्या करूँ ? इस संपत्तिशालिनी उज्जयिनी नगरी में मैं अपने योग्य ब्राह्मण कहाँ खोजूँ ? (**देख कर**) वह आ

रहा है मैत्रेय—चारुदत्त का मित्र ! अच्छा ! इसी से पूछूँ । आर्य मैत्रेय ! आज मैं आपको भोजन के लिये अपने घर निमंत्रित करता हूँ ।

[**नेपथ्य में—आप किसी और ब्राह्मण को बुला लें । मैं तो इस समय काम में लगा हुआ हूँ ।**]

सूत्रधार : आर्य्य ! भोजन तैयार है । वहाँ कोई परेशानी नहीं होगी । बताइये न ? आपकी दक्षिणा क्या होगी ?

[**फिर नेपथ्य से—अरे ! जब मैंने पहले ही आपका निमंत्रण अस्वीकृत कर दिया तो व्यर्थ ही आप इतना आग्रह करके मुझे निमंत्रण देने की चेष्टा क्यों कर रहे हैं ?**]

सूत्रधार : अरे ! आप तो सचमुच मना कर रहे हैं ! अच्छा ! किसी दूसरे ब्राह्मण को खोजता हूँ ।

[**प्रस्थान**]

[**प्रस्तावना समाप्त**]

[**हाथ में उत्तरीय लिये मैत्रेय का प्रवेश**]

मैत्रेय : (**प्रवेश करता हुआ**) मैं तो कह चुका । किसी और ब्राह्मण को खोज लो । क्या मुझ मैत्रेय को भी निमंत्रण की वस्तुएं खानी चाहियें ? हाय रे काल ! तूने तो मुझे रूई जैसा दीन कर दिया । मैं जो कि एक दिन चारुदत्त की संपत्ति से आदरपूर्वक सुगंधित और मनोरम मोदक खा-खाकर तृप्त था, उसके अंतःपुर की बैठक के दरवाजे पर बैठा-बैठा सैकड़ों मिठाइयों के बर्तनों से घिरा हुआ चितेरे की तरह उँगलियों से छू-छू कर

उन्हें छोड़ देता था। उन दिनों मैं नगरचौक के साँड की तरह पागुर करता रहता था। आज वही मैं चारुदत्त को गरीबी के कारण इधर-उधर से दाना चुग कर पालतू कबूतर की तरह यहाँ आया हूँ! (सोच कर) आर्य्य चारुदत्त के प्रिय मित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों की सुगंध से रमे इस उत्तरीय को देवकार्य्य संपादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जा कर देने को कहा है। चलूँ। आर्य्य चारुदत्त को ढूँढूँ! (घूम कर और देख कर) देवों की पूजा आदि करके आर्य्य चारुदत्त अब गृहदेवों की पूजा करते हुए इसी ओर आ रहे हैं।

[इसके बाद निर्दिष्ट स्थान पर चारुदत्त और रदनिका का प्रवेश]

चारुदत्त : (ऊपर की ओर देख कर दुःख-भरा निश्वास ले कर) कुछ दिन पहले हमारे पास द्वार पर पूजा के समय गिराई हुई चीज़ों को हंस और सारस पक्षी खाया करते थे और आज! उसी जगह घास उग आई है, क्योंकि लोग अब यहाँ चलते-फिरते भी नहीं। केवल यहाँ कीड़े चल रहे हैं और उनके मुख से केवल खाये हुए बीजों के तिनके अवश्य गिर जाते हैं।

[धीरे-धीरे टहल कर, घूमते हुए चारुदत्त बैठ जाता है।]

विदूषक : आर्य्य चारुदत्त हैं। चलूँ उनके पास। (निकट जा कर) श्रीमान् को प्रणाम करता हूँ। आपकी वृद्धि हो।

चारुदत्त : अरे! सब प्रकार के समयों में मित्र बने रहने वाले सखा मैत्रेय! तुम आ गये? आओ स्वागत है। बैठो।

विदूषक : जैसी आपकी आज्ञा (बैठ कर) मित्र! तुम्हारे मित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों से सुगंधित उत्तरीय भेजा है और मुझसे कहा है कि देवकार्य्य संपादित करने वाले आर्य्य चारुदत्त के पास ले जाओ।

[देता है। चारुदत्त ले कर चिन्तित हो जाता है।]

विदूषक : मित्र ! क्या सोच रहे हो ?

चारुदत्त : सखे ! घने अंधेरे में जिस तरह दीपक का उजाला अच्छा लगता है उसी तरह दुख का अनुभव कर लेने पर ही सुख का आगमन आनंद देता है। लेकिन जो व्यक्ति सुख भोग लेने के बाद दरिद्र हो जाता है, वह शरीर धारण करते हुए भी मुर्दे की तरह ही होता है।

विदूषक : मित्र ! मृत्यु और दरिद्रता ! इन दोनों में से तुम्हें कौन अधिक पसंद है ?

चारुदत्त : सखे ! निर्धनता और मृत्यु में तो मृत्यु ही अच्छी है, दरिद्रता नहीं। मृत्यु में तो थोड़ी देर दुख होता है, जबकि निर्धनता में तो अनन्तकाल तक दुख ही दुख रहता है।

विदूषक : मित्र ! दुखी होना व्यर्थ है। माँगने वालों को दान दे-दे कर आपका वैभव वैसा ही अधिक मनोरम लगने लगा है जैसे देवताओं के पी लेने पर प्रतिपदा की बची हुई क्षीण चंद्रकला।

चारुदत्त : मुझे धन के चले जाने का दुख नहीं है मित्र ! मुझे तो और ही कुछ भीतर ही भीतर जला कर भस्म किये दे रहा है। जैसे समय के फेर से हाथी के गंडस्थल से मद के बहने के रुक जाने पर भौंरे भी वहाँ मँडराना छोड़ देते हैं, वैसे ही मेरे घर को धनहीन समझ कर अब अतिथियों ने भी आना छोड़ दिया है।

विदूषक : मित्र ! यह क्षणभंगुर धन बड़ी बुरी चीज है। जैसे बर्रे और ततैयों से डरा ग्वारिया का लड़का ऐसे स्थान में जा

छिपता है जहाँ बर्र उसे न काट सकें, वैसे ही यह धन भी कंजूसों के ही घर में छिपा रहता है।

चारुदत्त : मित्र ! सच कहता हूँ। धन गया, मुझे इसकी कोई भी चिंता नहीं है, क्योंकि धन का आना-जाना तो भाग्य पर निर्भर है। लेकिन मुझे तो दुख इस बात का है कि धनहीन हो जाने पर मित्र भी मुँह फेर लेते हैं। गरीबी के कारण लज्जा होने लगती है। लज्जित मनुष्य का तेज नष्ट हो जाता है। और जिसमें तेज नहीं होता यह संसार उसका तिरस्कार कर देता है। ऐसे समय में मन उचाट हो जाता है, और जब वैराग्य पैदा हो जाता है तब मन को शोक घेर लेता है। मित्र ! शोक के उदय से बुद्धि भी क्षीण हो जाती है और बुद्धि के क्षीण होने पर तो सर्वनाश ही आत्मा घेर लेता है। सच ! यह दरिद्रता नहीं है, यह तो सारी मुसीबतों की जड़ है।

विदूषक : तभी तो कहता हूँ कि उस क्षणभंगुर धन की याद कर-कर के दुखी होना व्यर्थ ही है।

चारुदत्त : मित्र ! निर्धनता ही तो मनुष्यों की चिंता का आश्रय है। वही शत्रुओं के अपमान का स्थान है। वही शत्रु, और मित्रों का घृणापात्र है, अपनों के भी वैर का कारण है। जो धनहीन है, जिसके पास धन नहीं है; उसे ही वन में चले जाने की इच्छा होती है। उसे तो अपनी स्त्री का भी अपमान सहना पड़ता है। यह गरीबी तो हृदय के भीतर बसी हुई वह शोक की आग है जो एक ही बार जला कर समाप्त नहीं कर देती, वरन् घुला-घुला कर मारती है। जाने दो मित्र ! मैं गृहदेवों की पूजा कर चुका हूँ। तुम चौराहे पर जाकर मातृदेवियों को बलि चढ़ा आओ।

विदूषक : मैं तो नहीं जाऊँगा ।

चारुदत्त : क्यों ?

विदूषक : जब पूजा करने पर भी देवता तुम पर प्रसन्न नहीं होते, तब उनकी पूजा करने से भी लाभ ही क्या है ?

चारुदत्त : ऐसा न कहो सखे ! घर-गिरस्ती लोगों का यह नित्य नियम है । तप, मन, वाणी और बलिकर्मों से पूजित देवता, प्रशांत चित्त वाले मनुष्य पर सदैव प्रसन्न होते हैं । इसमें कोई तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है । तुम जाओ और मातृदेवियों पर बलि चढ़ा आओ ।

विदूषक : नहीं जी । मैं नहीं जाऊँगा । इस काम के लिये तो किसी और ही को भेजो । जैसे दर्पण में देखने पर दाहिना अंग बाँया और बाँया दाहिना-सा लगता है, उसी तरह मुझ ब्राह्मण के तो सारे कामों का उल्टा ही फल निकलता है । और फिर संध्या का समय ! मार्ग पर इस समय तो वेश्या, विट, चेट और राजश्याल आदि घूमा करते हैं । जैसे मेंढक के लोभी कालसर्प के मुँह में गिरने पर चूहा फँस जाता है, वहाँ जा कर तो मैं भी उनके हाथों में फँस जाऊँगा । भला, तुम यहाँ बैठे-बैठे तब कर भी क्या लोगे ?

चारुदत्त : अच्छा तो ठहरो । मैं सायंकालीन जप आदि से निवृत्त हो लूँ ।

[**नेपथ्य में—'ठहर ! वसंतसेने ! ठहर !'**
विट, शकार तथा चेट से पीछा की जाती हुई वसंतसेना का प्रवेश ।]

विट : वसंतसेने ! ठहरो ! ठहरो ! इतनी भयभीत हो तुम कि अपनी मंद गति को छोड़ कर, नृत्यकला में निपुण चरणों को जल्दी-जल्दी धरती हुई, पीछा करने वाले शिकारी से डरी हुई हरिणी की तरह भागी जा रही हो !

शकार : ठहर ! वशंतशेने ! ठहर ! क्यों जाती है ? क्यों भागती है ? अरे क्यों गिरती-पड़ती जा रही है ? बाले ! प्रशन्न हो । मृत्यु की शंका त्याग दे । तनिक ठहर ! देख आग में पड़े हुए मांश-खंड की भाँति मेरा क्षुद्र हृदय काम से जल रहा है ।

चेट : आर्य्ये ! ठहरो ! ठहरो ! सुंदर पुच्छ वाली ग्रीष्म-मयूरी की भाँति डरी हुई मेरी बड़ी बहिन की तरह तुम जा रही हो । वन में गये हुए मुर्गे के बच्चे के समान मेरे स्वामी शकार तुम्हारे पीछे लगे हुए हैं ।

विट : वसंतसेने ! रुक जाओ ! अपने चरणों से तुम पृथ्वी पर ऐसे ही लाल कमल झराती जा रही हो, जैसे अस्त्र द्वारा मनःशिला को विदीर्ण किया जाता है । वायु के स्पर्श से तुम्हारा अंचल चंचल हो रहा है । लाल वस्त्र पहने हुए तुम केले के नवीन पत्ते की तरह काँपती हुई क्यों जा रही हो ?

शकार : रुक जा वशंतशेने ! रुक जा ! मेरी वाशना को बढ़ाती हुई । रात्रि में मेरी शय्या पर आकर मेरी निद्रा भंग करने वाली तू भयभीत गिरती-पड़ती क्यों भागी जा रही है ? इस शमय तो तू मेरे वश में वैशे ही आ गई है जैशे रावण के वश में कुंती हो गई थी ।[1]

विट : वसंतसेने ! गरुड़ से डरी हुई सर्पिणी की भाँति तुम मुझसे भी तेज पग बढ़ाती भागी जा रही तो । मैं और भी वेग से चलकर वायु को रोक सकता हूँ । किंतु हे सुंदरी ! मैं तुम्हें जबर्दस्ती नहीं रोकना चाहता ।

शकार : विद्वन् ! विद्वन् ! लंपटों की काम-नाशिका, मत्स्यप्रिया,[2]

---

१. शकार ऐसी ही अनर्गल बातें कहता है ।

२. मछली खाने की शौकीन ।

नृत्यशीला, नाशकारिणी, वंशनाशिनी, अवशीकृता, काम की पिटारी, वेश्यागामियों की वधू, शुंदर आभूषणों का श्थान तथा वेशवती, ऐशे-ऐशे मैंने उशके दश नाम रखे हैं, फिर भी वह मुझे नहीं चाहती।

विट : शीघ्र भागने के कारण कुण्डलों की रगड़ से उसके कपोलों पर वैसे ही निशान पड़ गये हैं जैसे विटों के नखों से वीणा पर पड़ जाते हैं। अरी ! मेघ गर्जन से डरी हुई सारसी की तरह तुम क्यों भागी जा रही हो ?

शकार : अनेक आभूषणों की झंकार गुँजाती हुई तुम राम शे डरी हुई द्रौपदी की तरह क्यों भागी जाती हो ? जिश प्रकार हनुमान ने विश्वावशु की बहिन का हरण किया था, उशी प्रकार मैं भी तो तुम्हारा अपहरण करता हूँ !

चेट : शकार के साथ भोग करो। अरे ऐसा करने पर तुम मछली का माँस खूब खाओगी। इनके घर में मछली का इतना माँस बनता है कि कुत्ते भी उनको छोड़ कर मुर्दों पर नहीं टूटते।

विट : कमर में उज्ज्वल, अद्‌भुत और मनोहर करधनी पहननेवाली, मैनसिल से अनुलिप्त सुगंधित मुख वाली तुम नगर-देवता की भाँति क्यों डरी हुई-सी भागी जाती हो ?

शकार : वन में कुत्तों शे भगाई गीदड़ी की तरह तू हमें तेज़ी शे पीछा करते देख, मेरे घिरे हुए हृदय को चुराकर वेग शे भागी जाती है !

वसंतसेना : पल्लवक ! पल्लवक ! परिभृतिके ! परिभृतिके !

शकार : (डरते हुए) भाव ! भाव ! कोई मनुष्य है, मनुष्य !

विट : डरो मत ! डरो मत !

वसंतसेना : माधविके ! माधविके !

विट : (हँसी करता हुआ-सा हँसकर) मूर्ख ! वह अपने परिजन को ढूँढ़ रही है ।

शकार : भाव ! भाव ! क्या वह किशी स्त्री को खोज रही है ?

विट : और नहीं तो ?

शकार : तो मैं भी शैंकड़ों श्त्रियों को मारने में शूर हूँ ।

वसंतसेना : (सूनापन देख कर) हाय ! दुख ! चारों ओर दुख ! नहीं मालूम, परिजन भी कैसे अलग हो गये ! अब तो मुझे स्वयं ही अपनी रक्षा करनी है ।

विट : खोजो ! उन्हें खोजो !

शकार : वशंतशेने ! परिभृतिका, पल्लवक या शारे वशंत माश का नाम ले-लेकर रो । जब मैं तेरा पीछा कर रहा हूँ तब भला ऐशा है कौन जो तेरी रक्षा कर शके ? क्या तुझे अब भीमशेन बचायेगा या परशुराम ? अर्जुन आयेगा या रावण ! अब तो तेरे शिर के बाल पकड़कर मैं भी दुःशाशन का अनुकरण करूँगा। देख ! देख ! मेरी तलवार तेज़ है । अब तो मैंने तेरा शिर भी पकड़ लिया। क्या तेरा शिर काट डालूँ ? या तुझे जान शे मार डालूँ ? अब तेरा भागना बेकार है। जो मौत के पाश आ लगता है वह फिर जीवित नहीं हो शकता ।

वसंतसेना : आर्य्य मैं अनाथिनी हूँ ।

विट : इसीलिये तो जी रही हो !

शकार : तभी तो तुम्हें मार नहीं डाला गया ।

वसंतसेना : (स्वगत) हाय ! इनकी तो नम्रता भी भयभीत करने वाली है । अच्छी बात है । तो फिर यही सही (प्रगट) आर्य्य । आपको मेरा कौन-सा आभूषण चाहिये ?

विट : ऐसा न कहो वसंतसेने ! बाग की लता फूलों की चोरी नहीं

चाहती । मुझे गहनों से क्या करना है ?

वसंतसेना : तो फिर आपका मतलब क्या है ?

शकार : तो फिर मुझ देवपुरुष, मनुष्य, वाशुदेव को कामना करो !

वसंतसेना : (क्रोध से) चुप रहो ! मै सुनना भी नहीं चाहती । दूर हट जाओ ! तुम अनार्य्य वाक्य बोल रहे हो ! शांत हो ! शांत हो !

शकार : (ताली बजा कर हँसता हुआ) वाह ! वाह ! ज़रा देखो तो शही ! हृदय शे तो यह वेश्यापुत्री अत्यंत प्रशन्न है । तभी तो मुझशे कहती है—आओ थक गये हो ! श्रांत हो गये हो ? न तो मैं किशी दूशरे गांव गया हूँ । न किशी नगर ही में गया हूँ । आर्य्यिके ! मैं तो अपने पूज्य विट का शिर अपने पैरों शे छू कर कशम खाता हूँ कि तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ने के कारण ही मैं थक गया हूँ ।

विट : (स्वगत) अरे यह मूर्ख शांत को भी श्रांत समझ रहा है ? (प्रगट) वसंतसेने ! तुमने वेश्याओं के प्रतिकूल भाषा का प्रयोग किया । देखो ! युवकों से सेवित वेश्यालय की याद करो । आर्य्ये ! तुम तो अपने को पथ में उत्पन्न होने वाली लता के समान समझो ! हाट में धन से खरीदी जाने वाली वस्तु की भाँति तुम्हारी देह है । तुम्हें तो रसिक और अरसिक दोनों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए । बावड़ी में तो विद्वान् ब्राह्मण भी स्नान करता है और नीचवर्ण का मूर्ख भी । जिस फूलों से लदी लता को मोर झुकाता है, उसी को कौआ भी झुकाता है । जिस नौका से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पार उतरते हैं, उसी से शूद्र भी जाते हैं । तुम वेश्या हो, उसी बावड़ी, लता और नौका के समान हो । तुम्हें तो हर आदमी का एक-सा सम्मान करना चाहिये !

वसंतसेना : प्रेम का कारण तो गुण होता है, न कि बलात्कार !

शकार : विघ्न ! विघ्न ! उश कामदेवायतन-उद्यान शे ही यह गर्भदाशी उश दरिद्र चारुदत्त पर आशक्त है । यह तभी मुझे नहीं चाहती । बाईं ओर उशका घर है । कहीं ऐशा न हो कि यह मेरे-तुम्हारे हाथों में शे बचकर निकल जाये ।

विट : (स्वगत) यह मूर्ख वही बात कहता है, जो इसे नहीं कहनी चाहिये । क्या सचमुच वसंतसेना आर्य्य चारुदत्त पर अनुरक्त है ? सच ही है । ठीक ही कहा है कि रत्न का संयोग रत्न से ही हुआ करता है । यह ठीक भी है । इस मूर्ख से क्या होता है । (प्रगट) काणेली के पुत्र ! क्या सार्थवाह* चारुदत्त का घर बाईं ओर है ?

शकार : हाँ बाईं ओर उशका घर है ।

वसंतसेना : (स्वगत) अरे ! यदि सचमुच उसका घर बाईं ओर ही है तो इस दुष्ट ने बुराई करते हुए भी मेरा उपकार ही किया है कि प्रिय चारुदत्त का मिलन तो संभव हो गया !

शकार : भाव ! भाव ! घने अंधेरे में उर्द की ढेरी में गिरी हुई श्याही की टिकिया की तरह देखते ही देखते वशंतशेना अदृश्य हो गई ।

विट : उफ ! कितना घना अंधेरा है । मेरी यह तेज़ आँखें भी अचानक अंधेरे के घिर आने से कुछ भी नहीं देख पातीं । आँखें फाड़ कर देखने पर भी अंधेरे में कुछ भी नहीं दिखता । अंग-अंग में अंधकार व्याप्त हो रहा है, आकाश से काजल बरस रहा है । असज्जनों की सेवा की भाँति मेरी दृष्टि भी व्यर्थ हो गई है ।

---

*सेठ : वह जिसके सार्थ—काफिले चलें; बड़ा सेठ ।

शकार : भाव ! भाव ! वशंतशेना को ढूँढ रहा हूँ।

विट : काणेलीपुत्र ! कोई चिह्न है ऐसा जिसके सहारे तुम उसे खोज रहे हो ?

शकार : विद्वन ! भाव ! क्या कहते हो ?

विट : गहने झनकते हैं, या उसके पहने सुगन्धित फूलों की सुरभि आ रही है ?

शकार : आँखें तो अंधेरे शे ढक गई हैं। पर नाक शे शाफ़-शाफ़ फूलों की शुगंधि सुन रहा हूँ किन्तु आभूषणों की झंकार तो मुझे नहीं दिखाई देती।

विट : (धीरे से) वसंतसेने ! तुम भयभीत होकर अंधेरी रात में ऐसे छिप गई हो जैसे बादल में बिजली छिप जाती है। लेकिन तुम्हारी माला की सुगंधि और तुम्हारे बजने वाले नूपुर तो तुम्हारा पता बताकर ही रहेंगे। सुन रही हो ? वसंतसेने ?

वसंतसेना : (स्वगत) सुना और समझा भी ! (**अभिनय के साथ आभूषणों को समेट लेती है, सुगंधित मालाओं को फेंक देती है। घूम कर और हाथ से छू कर**) अरे ! भीत के स्पर्श से पता चलता है कि यह तो द्वार की किवाड़ें हैं। छूने से यह मालूम देता है कि घर का यह पिछला दरवाज़ा बन्द है।

चारुदत्त : सखे। मैंने जप समाप्त कर लिया। अब जाओ, तुम मातृ-देवियों को बलि चढ़ा आओ।

विदूषक : नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।

चारुदत्त : धिक्कार है रे दुःख। गरीबी के कारण मनुष्य के बंधु-बांधव भी बात नहीं सुनते। गहरे मित्र भी विमुख हो जाते हैं, मुसीबतें बढ़ जाती हैं। बल क्षीण हो जाता है। शीलरूपी चन्द्रमा की दीप्ति धुंधली पड़ जाती है। और दूसरों के पाप

भी दरिद्र पर ही लागू हो जाते हैं। निर्धन का साथ तो कोई नहीं चाहता। न कोई सम्मान से ही बोलता है। उत्सव के दिन अगर गरीब आदमी धनी के घर पहुँच जाये तो वहाँ भी उसे सब अनादर की दृष्टि से देखते हैं। मलिन वेश के कारण वह तो धनिकों से आप ही अलग रहता है। इसी लिये मुझे लगता है कि पाँच महान पापों की तरह निर्धनता भी कोई छठा बड़ा पातक है। अरी दरिद्रते! तूने मुझे अपना मित्र मान कर मेरे शरीर में अपना निवासस्थान बनाया है। सच मुझे तो यह चिंता सता रही है कि मुझ अभागे के मर जाने पर तुम कहाँ बसोगी ?

विदूषक : **(दुखी हो कर)** प्रिय मित्र, अगर मुझे जाना ही है तो फिर मेरे साथ रदनिका भी चले।

चारुदत्त : रदनिके ! तू भी मैत्रेय के साथ जा।

चेटी : जैसी आर्य्ये आज्ञा दें।

विदूषक : ले रदनिके ! बलिदीप को थाम ले। मैं किवाड़ें खोलता हूं।

[खोलता है।]

वसंतसेना : मुझे बचाने के लिये ही यह द्वार खुला है। तो इसी में घुस जाऊँ। **(देख कर)** हाय-हाय ! दीपक जल रहा है। **(आंचल से दीपक बुझा कर भीतर घुस जाती है।)**

चारुदत्त : मैत्रेय ! क्या हो रहा है ?

विदूषक : दरवाज़ा खुलते ही वायु के झोंके से दीप बुझ गया है। तू चल रदनिके ! बाहर खड़ी हो। मैं अभी अन्त:पुर से दीपक जला कर लाता हूँ। **(प्रस्थान)**

शकार : विद्वन ! भाव ! मैं वशन्तशेना को अवश्य खोजूंगा।

विट : खोजो ! खोजो !

शकार : (**विट को पकड़ कर**) भाव ! भाव ! पकड़ लिया ! पकड़ लिया !

विट : अरे मूर्ख ! यह तो मैं हूँ !

शकार : अच्छा आप छिप कर इधर एकांत में खड़े रहिये । (**फिर खोज कर चेट को पकड़ कर**) भाव ! भाव ! पकड़ लिया ! अबके तो पकड़ ही लिया !

चेट : भट्टारक* ! अरे यह तो मैं चेट हूँ ।

शकार : इधर विट ! उधर चेट ! विट चेट, चेट विट ! तुम दोनों एकांत में ठहरो । (**फिर खोज कर रदनिका के केश पकड़ कर**) भाव ! भाव ! अब तो वशंतशेना पकड़ी गई । बिल्कुल पकड़ी गई । अंधकार में भागती हुई तू माला की शुगंधि शे पकड़ी ही गई जैशे चाणक्य ने द्रौपदी के केशों को पकड़ा था ।

विट : तुम यौवन के गर्व से कुलपुत्र का अनुसरण करने चली थीं । इसी लिये तुम्हारा सुरभित केशपाश पकड़ कर खींचा जा रहा है ।

शकार : हे बाले ! अब तो तुम्हारे केश मेरे हाथ आ गये । भले ही गाली दे लो, तड़प लो, कुछ भी बको या शिव, शंभु और शंकर की ही याद कर लो ।

रदनिका : (**डर से**) यह क्या आर्यों का-सा व्यवहार है ?

विट : काणेलीपुत्र । यह तो किसी दूसरे का स्वर मालूम देता है !

शकार : भाव ! भाव ! जैशे दही और मक्खन की लालचिन बिल्ली अपनी आवाज़ बदल लेती है उशी तरह इस दाशीपुत्री वशंतशेना ने भी श्वर बदल लिया है !!

विट : स्वर बदल लिया ? क्या आश्चर्य्य की बात है ! लेकिन इसमें आश्चर्य्य भी क्या है ? रङ्गशाला में कलाओं की शिक्षा पा कर

* भर्त्ता, भट्टारक, स्वामी, मालिक ।

यह ठगने में कुशल हो गई है और इसी से इसने स्वर भी बदल लिया है।

विदूषक : (प्रवेश कर) कैसी अजीब बात है ! बलि देने को यूपकाष्ठ में ला कर बाँधे हुए बकरे की तरह यह दीपक भी फुर-फुर कर काँप रहा है। (निकट आ कर रदनिका को देख कर) रदनिके !

शकार : भाव ! भाव ! कोई आदमी लगता है। पुरुष है।

विदूषक : यह ठीक नहीं है, यह अच्छी बात नहीं है कि आर्य्य चारुदत्त की निर्धनता के कारण अब उनके घर में अनजाने व्यक्ति भी घुस आयें।

रदनिका : आर्य्य मैत्रेय ! मेरा अपमान तो देखो।

विदूषक : तेरा अपमान ? या यह हमारा अपमान है ?

रदनिका : हाँ-हाँ, आप ही का तो है !

विदूषक : यह कैसा बलात्कार हो रहा है !

रदनिका : देखो तो !

विदूषक : सचमुच !

रदनिका : झूँठ कहाँ कहती हूँ !

विदूषक : (क्रोध से हाथ का डण्डा उठा कर) ऐसा मत कहो ! अपने घर में कुत्ता भी प्रचण्ड होता है, फिर मैं तो ब्राह्मण हूँ। हमारे भाग्य से कुटिल इस मोटे डण्डे से ही मैं तुम्हारे सिरों को ऐसे कूटे देता हूँ जैसे कोई सूखा बाँस हो।

विट : महाब्राह्मण ! क्षमा करिये। क्षमा करिये !

विदूषक : (विट को देख कर) इसका अपराध नहीं है। (शकार को देख कर) यही अपराधी है। अरे राजा के साले संस्थानक ! दुष्ट ! अविनयी !! यह क्या ठीक है ? भले ही आर्य्य चारुदत्त दरिद्र हो गये हैं, फिर भी उनके गुणों से उज्जयिनी नगरी क्या

सुशोभित नहीं है, जो आप लोग उनके घर में घुस कर उनके परिजनों को मार रहे हैं ? क्या निर्धन समझ कर किसी का अनादर करना उचित है ? यमराज के यहाँ तो निर्धन ही नहीं, दुश्चरित्र होने पर धनिक भी दुर्गति का पात्र बनता है ।

विट : **(व्यथित हो कर)** महाब्राह्मण ! क्षमा करिये ! क्षमा करिये ! किसी और को समझ लेने की गलती से ऐसा अनुचित काम हो गया है, इसमें अहंकार की कोई बात नहीं । हम तो, देखिये, एक स्त्री को ढूँढ रहे थे···

विदूषक : यही है वह स्त्री ?

विट : नहीं-नहीं । पाप शान्त हो ! वह तो स्वाधीन यौवना है । वह तो भाग गई लेकिन उसके भ्रम में सदाचार का यहाँ उल्लंघन हो गया ! हम सविनय प्रार्थना करते हैं । **(ऐसा कह कर तलवार पीछे करके हाथ जोड़ कर चरणों पर गिर जाता है ।)**

विदूषक : उठो सत्पुरुष ! उठो ! अनजाने ही मैंने आपकी निंदा कर दी । अब तो मैं आपसे विनय करता हूँ ।

विट : विनय तो हम करेंगे । आप ही इसके पात्र हैं । मैं अवश्य उठूँगा किंतु एक शर्त्त पर ।

विदूषक : कहिये ।

विट : यही कि इस घटना के बारे में आप आर्य्य चारुदत्त से कुछ नहीं कहेंगे ।

विदूषक : अच्छा, नहीं कहूँगा ।

विट : आपकी इस प्रीति को मैं अपने सिर पर धारण करता हूँ । इसी कारण तो शस्त्र धारण करने पर भी आपके गुणरूपी शस्त्र से हार गये हैं ।

शकार : **(विद्वेष से)** हे भाव ! आप किशलिये इश दुष्ट ब्राह्मण

लड़के के पाँवों पर ऐशे हाथ जोड़ कर गिर पड़े हैं !

विट : मैं डर गया हूँ।

शकार : किशशे डर गये हैं ?

विट : उस चारुदत्त के गुणों से।

शकार : ऐशे कौन-शे गुण हैं उनमें ? उनके घर में घुशने पर तो खाने को भी नहीं मिलता !

विट : ऐसा न कहें। यह चारुदत्त तो हम जैसे याचकों को दान दे-देकर भी निर्धन हो गया है। उसने धन के कारण कभी किसी का अपमान नहीं किया। वह तो ग्रीष्म के उस जलपूर्ण तालाब की भाँति है जो कि मनुष्यों की प्यास बुझाने में स्वयं सूख जाता है।

शकार : (**क्रोध से**) वह कौन गर्भदाशी का पुत्र है ? क्या वीरता में वह पाण्डवों-शा है ? या वह राधा का पुत्र श्वेतकेतु है ? या वह इंद्र का पुत्र रावण है ? या राम और कुंती का पुत्र अश्वत्थामा है ? या धर्म का पुत्र जटायु है ?

विट : मूर्ख ! यह तो आर्य्य चारुदत्त हैं ! दीनों के लिये कल्पतरु हैं ! अपने ही गुणों से विनम्र, सज्जनों के पोषक, विनीतों के लिये आदर्श, वे तो सच्चरित्रता की कसौटी की तरह हैं। शील की मर्यादा के समुद्र, लोक के उपकारी, कभी किसी का भी वे अपमान नहीं करते। पुरुष के गुणों के निधान, वे सरल और उदार चित्त वाले हैं। सचमुच ! अनेक गुण से युक्त अकेले चारुदत्त का ही जीवन प्रशंसनीय है। और लोगों का तो जीवन व्यर्थ ही है। अब मैं इसी से जाता हूँ।

शकार : वशंतशेना को पकड़े बिना ही ?

विट : वसंतसेना तो गायब हो गई।

शकार : वह कैशे ?

विट : जैसे अंधे की दृष्टि, या पीड़ितों की सामर्थ्य, या मूर्खों की बुद्धि होती है, या जैसे आलसियों की सिद्धि, या मंदबुद्धि कामुक का उत्कृष्ट ज्ञान होता है, या शत्रुओं का स्नेह होता है, ऐसे ही तुमको पा कर वह अदृश्य हो गई।

शकार : तो क्या मैं वशंतशेना को पाये बिना ही लौट जाऊँगा ?

विट : क्या तुमने यह नहीं सुना कि हाथी खंभे में बांध कर, और घोड़ा लगाम के ज़ोर से, वश में किया जाता है, उसी प्रकार स्त्री हृदय से अनुरक्त होने पर ही वशीभूत होती है। और अगर ऐसा नहीं है, तो फिर चलो !

शकार : तुम जाते हो तो जाओ। मैं तो नहीं जाऊँगा।

विट : तो फिर मैं तो चला। (**प्रस्थान**)

शकार : भाव तो गया। अब जाने दो। अभाव हो गया। (**विदूषक से**) अरे कौए के पैर की तरह के छोटे माथे वाले दुष्ट वटुक ! बैठ जा ! बैठ जा !

विदूषक : हमें तो पहले ही बिठा दिया गया है।

शकार : किश के द्वारा !

विदूषक : दैव के। और किसके !

शकार : उठो ! उठो !

विदूषक : उठेंगे।

शकार : कब ?

विदूषक : जब कभी फिर दैव अनुकूल होगा।

शकार : अरे ! रोओ ! रोओ !

विदूषक : हम लोग तो रुलाये जा चुके हैं।

शकार : किशके द्वारा ?

विदूषक : दुर्गति के द्वारा।

शकार : अरे हँशो! हँशो!

विदूषक : हँसेंगे।

शकार : कब!

विदूषक : जब फिर कभी आर्य्य चारुदत्त धनी हो जायेंगे।

शकार : अरे दुष्ट वटुक! उश दरिद्र चारुदत्त शे मेरे वचन कहो कि शोने के गहनों शे शजी हुई नये नाटक में अभिनय करने को आई हुई नटी-शी यह गणिका वशंतशेना तुम पर कामदेवायतन उद्यान शे ही आशक्त हो गई है। हम लोगों के बलपूर्वक आग्रह और अनुनय करने पर भी वह तुम्हारे घर में चली गई है। यदि तुम श्वयं उशे मेरे हवाले कर दोगे तो तुम जैशे दानी और हममें आपश में शदा बनी रहने वाली प्रीति हो जायेगी, नहीं तो मौत तक हमारी तुमशे शत्रुता हो जायेगी। देखो! गोबर शे पुतो डाली वाला कुम्हड़ा, शूखा शाग, तला हुआ मांश और हेमंत की रात में पकाया हुआ भात, ये शब बहुत शमय बीत जाने पर भी नहीं बिगड़ते। शमझ लो! मेरे अनुकूल कहना और शीघ्र कहना। ऐशे कहना कि मैं अपनी अट्टालिका पर नई कबूतर बैठने की अटारी पर बैठा हुआ शबको शुन शकूँ। और जो नहीं कहोगे तो कपाट के बीच दबे कैथ की तरह तुम्हारे शिर को मड़-मड़ ध्वनि फैलाते हुए पीश डालूँगा।

विदूषक : कह दूँगा।

शकार : (स्वर उठा कर) चेट! क्या भाव शचमुच चला गया?

चेट : और क्या?

शकार : तब तो हमें भी शीघ्र जाना चाहिये।

चेट : तो स्वामी की यह तलवार तो ग्रहण करें।

शकार : तुम ही लिये रहो !

चेट : यह तो भट्टारक का खड्ग है। अब उनके स्थान पर आप हैं तो आप ही संभाले !

शकार : (उल्टी पकड़ कर) म्यान में रखी चमकदार और रक्त वर्ण की तलवार कंधे पर रख कर उशी प्रकार मैं भी अपने घर की ओर भागता हूँ जैशे भूँकते हुए कुत्तों-कुतियों के पीछे लग जाने पर श्यार शरण के लिये भागता है।

[घूम कर चले जाते हैं।]

विदूषक : रदनिके ! अपने इस अपमान के बारे में आर्य्य चारुदत्त से कुछ न कहना, क्योंकि वे अपनी हालत से वैसे ही दुःखी हैं। इसे सुन कर तो वे बहुत ही पीड़ित हो जायेंगे।

रदनिका : आर्य्य मैत्रेय ! रदनिका सदा ही से संयमपूर्वक बोलने वाली रही है।

विदूषक : हाँ, यह बात तो है।

चारुदत्त : (वसंतसेना से) रदनिके ! हवा खाते हुए रोहसेन आज सायंकाल ठंडी वायु से पीड़ित हो गया है। इसे अंदर ले जाओ और इस उत्तरीय को उसे ओढ़ा दो। (उत्तरीय देता है।)

वसंतसेना : (स्वगत) क्या यह मुझे अपनी सेविका समझ रहे हैं ? (उत्तरीय ले कर, उसे सूंघ कर, प्रसन्न हो कर, स्वगत) अहा ! चमेली के फूलों की सुगंधि से भरा हुआ यह उत्तरीय ! इसका यौवन अभी कामुक ही लगता है।

[मुख फेर कर अपने को छिपाती है।]

चारुदत्त : अरी रदनिके ! रोहसेन को ले कर भीतर चली जा !

वसंतसेना : (स्वगत) तुम्हारे घर के भीतर प्रवेश करने की मैं अधिकारिणी नहीं हूँ !

चारुदत्त : रदनिके ! बोलती क्यों नहीं ? कैसा कष्ट है ! भाग्य से जब मनुष्य की दीनावस्था आ जाती है तब उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। यहाँ तक कि बहुत दिनों से अनुरक्त रहने वाले भी विरक्त हो जाते हैं।

विदूषक : (रदनिका के पास जा कर) आर्य्य ! रदनिका तो यह है।

चारुदत्त : रदनिका वह है ! तो यह दूसरी कौन है ? अनजान में ही यह मेरे वस्त्र को छू कर परपुरुष के स्पर्श से ही दूषित हो गई !

वसंतसेना : (स्वगत) नहीं। मैं तो भूषित हो गई।

चारुदत्त : शरद के मेघ से ढँकी चंद्रकला-सी दिखती है। लेकिन परस्त्री को देखना उचित नहीं है।

विदूषक : अरे आप परस्त्री को देखने की शंका मत करिये। यह तो वसंतसेना है जो कामदेवायतन उद्यान से ही आप पर अनुरक्त है।

चारुदत्त : अरे ! वसंतसेना ! (स्वगत) विशाल वैभव के नष्ट हो जाने पर भी मुझ पर वसंतसेना का अनुरक्त काम वैसा ही बेकार है जैसे अयोग्य व्यक्ति का क्रोध अपने ही शरीर में विलीन हो जाता है।

विदूषक : राजा का साला कहता है···

चारुदत्त : क्या कहता है ?

विदूषक : कि सोने के गहनों से सजी हुई नये नाटक में अभिनय करने को आई हुई नटी-सी यह गणिका वसंतसेना तुम पर कामदेवायतन उद्यान से ही आसक्त हो गई है। हम लोगों के बलपूर्वक आग्रह और अनुनय करने पर भी वह तुम्हारे घर में चली गई है।

वसंतसेना :(स्वगत) बलपूर्वक आग्रह और अनुनय करने पर भी, यदि यह ठीक है तो मैं इन शब्दों से सचमुच विभूषित हो गई।

विदूषक : यदि तुम स्वयं उसे मेरे हवाले कर दोगे तो तुम जैसे दानी और हममें आपस में सदा बनी रहने वाली प्रीति हो जायेगी, नहीं तो मौत तक हमारी तुमसे शत्रुता हो जायेगी।

चारुदत्त : (अवज्ञा से) वह मूर्ख है। (स्वगत) कैसी युवती है, देवता की भाँति उपासना करने योग्य ! कुछ ही देर पहले मेरे 'घर के भीतर चली जाओ' कहने पर भी यह हमारी दयनीय दशा देख कर भीतर नहीं गई। प्रगल्भ होने पर भी पुरुषों के सामने यह धृष्टता से बातें नहीं करती। (प्रगट) मानिनि ! वसंतसेने ! अनजान में तुम्हारे साथ दासी का-सा व्यवहार करने के कारण मैं अपराधी हूँ। अतः तुमसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

वसंतसेना : मैं अयोग्या ही आपके घर में घुस आने की अपराधिनी हूँ। आर्य्य को विनम्र हो कर इसलिये प्रसन्न करती हूँ। रुष्ट न हों।

विदूषक : वाह ! आप दोनों ने जब दूसरे को विनम्र हो कर प्रणाम किया तो कलम-केदार धान की भाँति आप दोनों के सिर एक दूसरे को छू गये। मैं भी अपने ऊँट के बच्चे के ऊँचे-नीचे सिर से आप दोनों को प्रणाम कर के प्रसन्न करता हूँ। (उठता है।)

चारुदत्त : अरे प्रणाम रहने दो !

वसंतसेना : (स्वगत) यह बात कितनी चतुर और मधुर है ! आज इस तरह मेरा यहाँ रहना ठीक नहीं है। तो कह दूँ। (प्रगट) आर्य्य ! जब आप मुझे इस प्रकार अनुग्रहीत कर रहे हैं तो मैं इन अलंकारों को आपके घर रख जाना चाहती हूँ। इन्हीं के कारण ये पापी मेरा पीछा करते हैं !

चारुदत्त : यह घर अब धरोहर रखने योग्य नहीं है।

वसंतसेना : आर्य्य ! यह झूठ है। धरोहर तो योग्य पुरुष के ही घर में रखी जाती है, न कि अयोग्य के।

चारुदत्त : मैत्रेय ! इन अलंकारों को ले लो।

वसंतसेना : मैं अनुग्रहीत हुई। (अलंकारों को देती है।)

विदूषक : (ले कर) आपका कल्याण हो !

चारुदत्त : धिक्कार है मूर्ख ! अरे यह तो धरोहर है।

विदूषक : (अन्यमनस्क-सा) तो क्या है ! भले ही चोर इसे ले जायें।

चारुदत्त : बहुत शीघ्र ही······

विदूषक : (काट कर) क्या इनका यह आभूषण हमारी विशेष धरोहर है ?

चारुदत्त : इसे मैं इन्हें लौटा दूँगा।

वसंतसेना : आर्य्य ! मैं इन मैत्रेय के साथ अपने घर जाना चाहती हूँ।

चारुदत्त : मैत्रेय ! इनके साथ जाओ।

विदूषक : इस हंसगामिनी के साथ चलने में तो आप ही राजहंस के समान शोभित होते हैं। मैं ब्राह्मण तो ऐरे-गैरे के हाथों चौराहे पर चढ़ायी हुई बलि को कुत्ते की तरह खाता हुआ ही मारा जाऊँगा।

चारुदत्त : अच्छी बात है। मैं ही इन्हें पहुँचाने जाऊँगा। राजपथ के विश्वास योग्य उजाला करने वाले दीपकों को जलाओ।

विदूषक : वर्द्धमानक ! दीपक जलाओ !

वर्द्धमानक चेट : (धीरे से) कहीं तेल बिना भी दीप जलाये जाते हैं ?

विदूषक : (धीरे से) अरे हमारे तो वे ही दीपक हैं जो अपमानित

दरिद्र कामुक वेश्या के समान इस समय स्नेहहीन हो गये हैं।

चारुदत्त: रहने दो मैत्रेय ! दीपक जलाने की क्या आवश्यकता है ! युवतियों के गोरे गाल-सा उज्ज्वल, तारों से घिरा हुआ राजपथ पर उजाला फैलाने वाला चन्द्रमा उग आया है। घोर अंधेरे में इसकी श्वेत किरणें जलहीन कीचड़ में दूध की-सी गिर रही हैं। (**प्रेम से**) वसन्तसेने ! यही आपका घर है। प्रवेश करें।

[**वसंतसेना अनुराग-भरी दृष्टि से देखती हुई जाती है।**]

चारुदत्त : मित्र ! वसंतसेना चली गई। चलो, अब हम भी घर चलें। पथ निर्जन हो गया है। केवल पथ-रक्षक इधर-उधर घूम रहे हैं। अब चोरी से बचना चाहिये क्योंकि बहुधा वह रात में ही होती है। (**घूम कर**) रात में इस सुवर्ण आभूषण की रक्षा तुम करना मैत्रेय ! दिन में इसकी देख-भाल वर्द्धमानक करेगा।

विदूषक : जैसी आपकी आज्ञा।

[**प्रस्थान**]

[**मृच्छकटिक का अलंकारन्यास (आभूषण की धरोहर) नामक प्रथम अंक समाप्त**]

दूसरा अङ्क

चेटी : (**प्रवेश कर**) माता ने मुझे आर्य्या वसंतसेना के पास कुछ संदेश कहने के लिये भेजा है। इसलिये वसंतसेना के पास चलती हूँ। (**घूम कर देख कर**) आर्य्या तो कुछ सोचती हुई बैठी हैं! निकट चलूँ उनके।

[**आसन पर बैठी उत्कण्ठिता वसंतसेना और मदनिका का प्रवेश**]

वसंतसेना : हाँ री ! फिर क्या हुआ ?

चेटी : आर्य्ये ! कुछ कहती तो हैं नहीं। फिर किसके बाद क्या ?

वसंतसेना : मैंने क्या कहा ?

चेटी : फिर क्या हुआ ?

वसंतसेना : (**भौं चला कर**) अच्छा ऐसे ?

पहली चेटी : (**पास आ कर**) आर्य्ये ! माता की आज्ञा है कि आप स्नान करके देवताओं की पूजा समाप्त करें।

वसंतसेना : अरी ! माता से कह कि आज मैं स्नान नहीं करूँगी। आज ब्राह्मण ही पूजा कर लें।

चेटी : जैसी आर्य्या की आज्ञा ।

[प्रस्थान]

मदनिका : आर्य्ये ! मैं किसी और भाव से नहीं, प्रेम से पूछती हूँ कि आख़िर बात क्या है ?

वसंतसेना : मदनिके ! मुझे तू किस दृष्टि से देखती है ?

मदनिका : आर्य्या का सूना मन देख कर मुझे लगता है कि आप किसी को हृदय से चाहती हैं ।

वसंतसेना : तूने ठीक समझा । दूसरों के मन की बात समझने में चतुर तू मदनिका जो ठहरी !

मदनिका : कितनी प्यारी बात है ! युवकों के महोत्सव में कौन-सा सौभाग्यशाली आपसे अनुग्रहीत हुआ है ! बताइये तो ! राजा है कोई या राजवल्लभ है जो सेवित हुआ है ?

वसंतसेना : नहीं सखि ! मैं तो रमण करना चाहती हूँ, सेवा करना नहीं ।

मदनिका : क्या किसी विद्या से भूषित युवक ब्राह्मण की कामना करती हैं ?

वसंतसेना : ब्राह्मण लोग तो हमारे पूज्य हैं ।

मदनिका : या अनेक नगरों में व्यापार करके धनी हुए किसी युवक व्यापारी की कामना करती हैं ?

वसंतसेना : व्यापारियों का क्या ? वे तो अत्यन्त स्नेहपात्र को भी छोड़ कर दूसरे देश में चले जाते हैं और वियोग का दुख उत्पन्न करते हैं ।

मदनिका : आर्य्ये ! न राजा है,न राजवल्लभ,न ब्राह्मण, न व्यापारी । तब वह है कौन जिसकी स्वामिनी कामना करती हैं ?

वसंतसेना : अरी ! तू हमारे साथ कामदेवायतन उद्यान में गई थी ?

मदनिका : गई तो थी आर्य्ये !

वसंतसेना : फिर भी मुझसे अनजान-सी पूछती है ?

मदनिका : अच्छा ! समझी । वही है ? जिसकी शरण में आप गई थीं ?

वसंतसेना : बता तो ! क्या नाम है उनका ?

मदनिका : वे तो श्रेष्ठि चत्वर[1] में रहते हैं ?

वसंतसेना : अरी ! नाम पूछती हूँ ।

मदनिका : आर्य्ये ! उनका नाम, स्वनामधन्य आर्य्य चारुदत्त है ।

वसंतसेना : (सहर्ष) वाह ! मदनिके ! वाह ! तूने ठीक समझा ।

मदनिका : (स्वगत) यह बात है । (प्रगट) आर्य्ये ! सुना है कि वे बड़े दरिद्र हैं !

वसंतसेना : इसी लिये तो मैं उन्हें चाहती हूँ । गरीब आदमी से प्रेम करने वाली गणिका की दुनिया में निंदा नहीं होती ।

मदनिका : आर्य्ये ! क्या मधुकरियाँ[2] ऐसे आम के पेड़ पर भी झूमती हैं जिसमें बौर नहीं फूटती ?

वसंतसेना : इसी लिये तो उनका नाम मधुकरी है, क्योंकि वे बस मधु की भूखी होती हैं !

मदनिका : यदि उनमें ऐसा मन ही रम गया है तो आर्य्ये ! उनसे शीघ्र ही किसी गुप्त रूप से मिलती क्यों नहीं ?

वसंतसेना : सखि ! बदले में कुछ भला कर सकने में असमर्थ हैं वे । उनसे गुप्त रूप से नहीं मिला जा सकता । फिर तो उनका दर्शन भी दुर्लभ हो जायेगा ।

---

१. सेठों के मुहल्ले में ।

२. भ्रमरियाँ ।

मदनिका : क्या इसी लिये वह आभूषण उनके हाथ में दे दिया है ?

वसंतसेना : हाँ, तूने ठीक समझा ।

[नेपथ्य में—अरे स्वामी ! अस्सी रत्ती सोने के लिये पकड़ा हुआ जुआरी भाग गया, भाग गया ! पकड़ो, उसे पकड़ो ! ठहर, ठहर ! मैंने तुझे दूर ही से देख लिया ।]

[पटी—छोटे पर्दे के बिना गिरे हुए ही घबड़ाये हुए संवाहक का प्रवेश]

संवाहक : जूआ भी बड़ा दुखदायी है । कैसा आश्चर्य्य है कि बंधन से शीघ्र खुली हुई गधी की तरह मैं कौड़ी से ही मारा गया । ठीक वैसे ही जैसे कर्ण के हाथों से छोड़ी गई शक्ति से घटोत्कच मारा गया था । जूएखाने के अध्यक्ष को लिखने में लगा हुआ देख कर मैं शीघ्र भाग निकला । और सड़क तक आ पहुँचा, लेकिन अब किसकी शरण में जाऊँ ! जब तक ये सभिक[1] और जुआरी मुझे खोजते हुए कहीं इधर-उधर न चले जायें तब तक मैं उल्टे पाँवों इस सूने मन्दिर में प्रवेश कर यहाँ देवी[2] बन जाता हूँ ।

[माथुर और जुआरी का प्रवेश]

माथुर : अरे स्वामी ! अस्सी रत्ती के लिये पकड़ा हुआ जुआरी भाग गया ! भाग गया ! पकड़ो, उसे पकड़ो ! ठहर ! ठहर ! जाता कहाँ है ? मैंने तुझे यहीं से देख लिया !

जुआरी : अरे तू बचने के लिये पाताल में घुस जा, या इन्द्र की शरण में चला जा । किन्तु एक सभिक के सिवा तो शिव भी तेरी रक्षा नहीं कर सकते ।

माथुर : स्वामी को धोखा देने वाले संवाहक ! काँप क्यों रहा था ! अरे इस ऊँची-नीची भूमि पर गिरते-पड़ते अपने नाम को

---

१. सभिक : जूए का अध्यक्ष

२. मूर्त्ति

कलंकित करता हुआ तू कहाँ-कहाँ भाग सकता है ?

जुआरी : (**पदचिह्न देख कर**) यहाँ तक पाँवों के निशान हैं। इससे आगे नहीं दिखाई देते !

माथुर : (**सोच कर**) अरे उलटे पाँवों के निशान हैं। मन्दिर सूना है। धूर्त्त जुआरी उलटे पाँवों देवमन्दिर में घुस गया है।

जुआरी : अच्छा, हम दोनों इन पाँवो के निशानों को देखते हुए चलें।

माथुर : चलो, यही करो।

[**दोनों देवमन्दिर में प्रवेश करते हैं। देख कर और आपस में इशारे करके—**]

जुआरी : क्या यह काठ की मूर्त्ति है ?

माथुर : अरे ! नहीं-नहीं, पत्थर का मूर्ति ! (**उसे हर तरह से हिला कर और सोच कर**) जो हो, आओ जुआ खेलें।

[**दोनों खूब जूआ खेलते हैं।**]

संवाहक : (**जूआ खेलने की इच्छा को अनेक प्रकार से रोकने की विफल चेष्टा करता हुआ**) (**स्वगत**) अरे ! कत्ता[1] शब्द निर्धन मनुष्य का मन उसी प्रकार अपनी ओर खींचता है और उसी प्रकार चिन्तित कर देता है, जैसे राज्य गँवाया हुआ राजा दूसरे के घर में नगाड़े की आवाज़ सुन कर व्याकुल हो उठता है। मैं जानता हूँ कि सुमेरु पर्वत की चोटी से गिरने की तरह जूआ हानिकारक है, और निश्चय करता हूँ कि मैं जूआ नहीं खेलूँगा फिर भी कोयल की प्यारी कूक की तरह कत्ता शब्द मेरे मन को अपनी ओर खींच रहा है।

जुआरी : मेरा दाँव है। मेरा।

---

१. कत्ता—जूए का एक संकेत-विशेष।

माथुर : नहीं, मेरा दाँव है। मुझे दो।

संवाहक : (**दूसरी ओर से सहसा पास जा कर**) नहीं जी। मेरा दाँव है।

जुआरी : अरे यह रहा वह !

माथुर : अरे दण्ड न भरने वाले ! अब पकड़ गया। लाओ अस्सी रत्ती सोना दो !

संवाहक : आज दे दूँगा।

माथुर : अभी दे।

संवाहक : दे दूँगा। ज़रा दया कीजिये।

माथुर : नहीं रे। इसी समय दे।

संवाहक : मेरा सिर गिरता है। (**भूमि पर गिर जाता है।**)

[**दोनों उसे खूब मारते हैं।**]

माथुर : इस समय तू जुआरियों की मण्डली से बँधा हुआ है।

संवाहक : (**उठ कर दुख से**) क्या मैं जुआरियों की मण्डली से घिरा हुआ हूँ। शोक ! अब इन्हें चुकाये बिना निकलना तो असंभव है। पर मैं दूँ भी तो कहाँ से ?

माथुर : अरे वचन दे !

संवाहक : देता हूँ। (**जुआरी के पास जा कर**) आधा मैं तुम्हें दूँगा और आधा छोड़ दो।

जुआरी : अच्छी बात है यही सही।

संवाहक : (**माथुर के पास जा कर**) आधे की शर्त्त मानता हूँ, आधा आप भी मुझ पर छोड़ दें।

माथुर : कोई हानि नहीं। मानता हूँ।

संवाहक : (**प्रगट**) आर्य्य ! आधा तो आपने छोड़ दिया ?

माथुर : छोड़ दिया।

संवाहक : (**जुआरी से**) आधा आपने भी छोड़ दिया ?

जुआरी : हाँ, छोड़ दिया।

संवाहक : तो इस समय मैं जाता हूँ।

माथुर : कहाँ जाता है ! पहले अस्सी रत्ती सोना तो दे !

संवाहक : अधिकारियो ! देखो, देखो ! आधा ही तो बदा है, आधा अभी हीं तो छोड़ा है। फिर भी मुझ निर्बल को छोड़ा जा रहा है !

माथुर : (पकड़ कर) धूर्त्त ! मैं चतुर माथुर हूँ। मैं इस समय तुझसे धूर्त्तता नहीं कर रहा हूँ। तू दण्ड नहीं भरना चाहता ? अभी सारा सोना दे दे।

संवाहक : पर कहाँ से दूँ ?

माथुर : अपने बाप को बेच कर दे।

संवाहक : परंतु मेरे पिता हैं कहाँ ?

माथुर : तो अपनी माँ को बेच कर चुका।

संवाहक : लेकिन मेरी तो माँ भी नहीं।

माथुर : तो अपने आपको बेच कर दे।

संवाहक : जरा दया करिये। मुझे राजमार्ग पर ले चलिये।

माथुर : चलो।

संवाहक : चलिये। (घूम कर) सज्जनो ! इस सभिक के हाथों से आप मुझे दस सुवर्ण में खरीद लें। (आकाश की ओर देख कर) क्या कहते हो ? क्या करोगे ? तुम्हारे घर में नौकर का काम करूँगा। अरे ! उत्तर दिये बिना ही क्यों चले गये ? जाने दो। मैं इन दूसरे सज्जन से कहूँगा। क्या आप मुझे नौकर नहीं रख सकेंगे ? हाय यह क्या ? आप भी मेरी अवहेलना करके चले गये ? हाय ! आर्य्य चारुदत्त के दरिद्र हो जाने से मैं ऐसा हतभाग्य हो गया !

माथुर : अरे तू हमें दे ।

संवाहक : कहाँ से दूँ ? (गिर पड़ता है ।)

[माथुर उसे घसीटता है ।]

संवाहक : आर्यो ! मेरी रक्षा करो । मुझे बचाओ !

[दर्दुरक का प्रवेश]

दर्दुरक : वाह ! जूआ भी मनुष्य का बिना सिंहासन का राज्य है । यह तो किसी के भी अपमान को कुछ गिनता ही नहीं । प्रत्येक दिन धन पैदा करता है, और मनमाना धन भी देता है । जैसे संपत्तिशाली राजा धनवानों से ही सेवित होता है, ऐसे ही जूए का भी हाल है । जूए से ही मैंने धन, स्त्री तथा मित्र को पाया है । जूए से ही किसी को कुछ दिया है और मौज भी उड़ाई है । और इस जूए में ही मैंने अपना सर्वनाश भी किया है । मेरा तो सब कुछ इस तीन के दाँव ने हर लिया । कौड़ी के दाँव ने मेरी तो देह ही सुखा दी । विजयी प्रसन्नता से उठ कर नाचने लगा । मुझे भागने का मौका मिल गया । अपनी शर्त्त का धन समय पर न चुकाने के कारण गिरता-पड़ता मैं भागा चला आ रहा हूँ । (आगे देख कर) अरे ! यह हमारा जाना-पहँचाना सभिक माथुर इधर ही आ रहा है । अब तो मैं भाग भी नहीं सकता । छिप जाऊँ कहीं ।

[अनेक प्रयत्न कर के अन्त में ठहर जाता है । अपने वस्त्र को देख कर]

इस वस्त्र के सूत छिन्न-भिन्न हो गये हैं । अब सैकड़ों छेदों से भरा यह देह तो नहीं ढँक सकता । इसे तो गुड़ी-मुड़ी कर लूँ तभी यह अच्छा लगेगा । और फिर यह बेचारा माथुर मेरा कर भी क्या सकता है ? मैं तो देह नीचे करके एक पाँव धरती पर और दूसरा आकाश की ओर उठा कर सायंकाल तक योंही

देह को कष्ट देते हुए खड़ा रह सकता हूँ। फिर दण्ड से क्यों डरूँ ?

माथुर : दे मुझे ! दे !

संवाहक : कहाँ से दूँ भला !

[माथुर उसे घसीटता है ।]

दर्दुरक : अरे यह क्या हो रहा है ? (आकाश की ओर देख कर) आपने क्या कहा ? यह सभिक इस जुआरी की दुर्गति करता है और कोई उससे उसकी रक्षा भी नहीं करता ? तो यह दर्दुरक ही रक्षा करेगा। (पास जा कर) आने दीजिये। आने दीजिये ! (देख कर) अरे ! यह तो धूर्त्त माथुर और दीन संवाहक हैं। यह संवाहक मेरी तरह एक टाँग ऊपर एक टाँग नीची करके सिर झुकाये शाम तक नहीं रह सकता। नुकीले पत्थरों पर घसीटे जाने से जिसकी पीठ पर निशान नहीं पड़ गये हैं, जिसकी जांघ का बीच का हिस्सा कुत्तों ने नहीं काटा है, उस लंबे और कोमल शरीर वाले आदमी के बार-बार जूआ खेलने से भला लाभ ही क्या है ? अच्छा ! तो मैं माथुर को शांत करूँ। (पास जा कर) माथुर ! प्रणाम करता हूँ।

[माथुर प्रणाम करता है ।]

दर्दुरक : यह क्या हो रहा है ?

माथुर : इस पर अस्सी रत्ती सोना निकलता है मेरा।

दर्दुरक : अरे धन तो क्षणभंगुर वस्तु है।

माथुर : (लपेटे हुए वस्त्र को दर्दुरक की काँख से खींचकर) देखिये महाशयगण ! यह फटे-चिथड़े पहनने वाला मनुष्य अस्सी रत्ती सोने को तुच्छ और क्षणभंगुर समझता है।

दर्दुरक : अरे मूर्ख ! मैं दस सुवर्ण तुझे दे दूँगा। शपथ खा कर

कहता हूँ। बता तो ! क्या जिसके पास धन रहता है वह उसे साथ लिये चला करता है ? अरे माथुर ! तुम नीच और पतित हो कि दस सुवर्ण के लिये पाँच इंद्रियों वाले मनुष्य को मारते हो !

माथुर : प्रभु ! आपके लिये दस सुवर्ण तुच्छ है, पर मेरे लिये तो वही एक वैभव है।

दर्दुरक : यदि यही बात है तो सुनो। इसे दस सुवर्ण और दो और यह तुमसे फिर जूआ खेले।

माथुर : उससे क्या होगा ?

दर्दुरक : यदि जीत जायेगा तो चुका देगा।

माथुर : और यदि नहीं जीता……

दर्दुरक : तो नहीं देगा।

माथुर : यह कैसी बेमतलब बात है ? दस सुवर्ण को तुच्छ समझने वाले धूर्त्त ! उसके बदले में तुम्हीं जो वह धन दे दो। समझ लो ! मैं भी धूर्त्त माथुर हूँ। क्या मैं अपने को व्यर्थ ही जूए का प्रधान माने फिरता हूँ ? मैं किसी से नहीं डरता। धूर्त्त ! तुम चरित्रहीन हो !

दर्दुरक : कौन है दुश्चरित्र ? कौन है ?

माथुर : तुम ! तुम दुश्चरित्र हो !

दर्दुरक : तेरा बाप होगा दुश्चरित्र।

[संवाहक को भागने का इशारा करता है।]

माथुर : नीच ! वेश्यापुत्र ! ऐसा ही जूआ सीखा है तुमने ?

दर्दुरक : हाँ, हाँ, यही सीखा है।

माथुर : अरे संवाहक ! ला वह दस सुवर्ण दे।

दर्दुरक : दे दूँ ! आज दे दूँगा । आज ही दे दूँगा ।

[माथुर संवाहक को खींचता है ।]

दर्दुरक : मूर्ख ! तुम मेरी गैरहाज़िरी में इसकी दुर्गति कर सकते हो, मेरे सामने नहीं कर सकते ।

[माथुर संवाहक को खींच कर उसकी नाक में घूँसा मारता है । संवाहक के रक्त निकलने लगता है और वह मूर्च्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ता है । दर्दुरक आगे आ कर उसे छुड़ाता है । माथुर दर्दुरक को मारता है । दर्दुरक भी उसे मारने लगता है ।]

माथुर : अरे नीच ! छिनाल के जाये ! इसका नतीजा भोगेगा ।

दर्दुरक : अरे मूर्ख ! तूने बिना मेरे अपराध के मुझे रास्ता चलते में मारा है । कल यदि राजदरबार में भी ऐसे ही मारेगा तो देखूँगा ।

माथुर : देख लूँगा ।

दर्दुरक : कैसे देखेगा ?

माथुर (आँखें फाड़ कर) ऐसे देखूँगा ।

[दर्दुरक धूल उठा कर माथुर की आँखों में फेंक कर संवाहक को भागने का इशारा करता है । माथुर आँखें मूँद कर भूमि पर गिरता है । संवाहक भाग निकलता है ।]

दर्दुरक : (स्वगत) प्रधान सभाध्यक्ष माथुर से मैंने विरोध कर लिया है । अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं । हमारे मित्र शर्विलक ने कहा है कि सिद्धों की वाणी के अनुसार गोपपुत्र आर्य्यक राजा होगा और हम जैसे आदमी उसी के अनुयायी बनते हैं । तब मैं भी उसी के पास चलूँ ।

[प्रस्थान]

संवाहक : (भयभीत-सा घूम कर देखते हुए) यह तो किसी का घर लगता है जिसका द्वार खुला हुआ है । इसी में घुस चलूँ ।

(प्रवेश का अभिनय करते समय वसंतसेना को देख कर) आर्य्ये ! मैं आपकी शरण में आ गया हूँ।

वसंतसेना : शरण में आये हुए आगंतुक निर्भय हो। दासी ! दरवाज़ा बंद कर दे।

[**चेटी द्वार बंद करती है** ।]

वसंतसेना : तुम्हें किसका भय है !

संवाहक : आर्य्ये ! मुझे धनवान से भय है।

वसंतसेना : दासी ! भीतर से द्वार में अर्गला लगा दे।

संवाहक : (स्वगत) यह भी मेरी ही तरह धनिकों से क्यों डरती है ? ठीक ही कहा गया है कि जो व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार भार ले कर चलता है वह न कहीं गिरता, न वह भयानक मार्गों में नष्ट ही होता है। मैं इसे बिल्कुल ठीक मानता हूँ।

माथुर : (आँखों को साफ कर के जुआरी से) अरे दे, दे !

जुआरी : स्वामी ! जब हम लोग दर्दुरक से लड़ रहे थे तभी संवाहक कहीं भाग गया।

माथुर : घूँसे की चोट से उस जुआरी की नाक फट गई थी। उससे लहू गिरने लगा था। चलो, उसी लहू के निशान देखते हुए चलें।

[**पीछा करने के पश्चात्**]

जुआरी : स्वामी ! वह वसंतसेना के घर में घुस गया है।

माथुर : तब तो समझ लो अस्सी रत्ती सोना पा ही लिया।

जुआरी : राजकुल में चल कर इसकी खबर दे दें।

माथुर : यह धूर्त्त वहाँ से निकल कर और कहीं चंपत हो जायेगा। वसंतसेना से विनय करके ही जो उसे पकड़ें !

[**वसंतसेना मदनिका को इशारा करती है** ।]

मदनिका : आप. कहाँ से आये हैं ? कौन हैं ? किसके सम्बन्धी हैं ? आप क्या काम करते हैं ? आपको किसका डर है ?

संवाहक : आर्य्या सुनें ! मेरा जन्मस्थान पाटलिपुत्र है, गृहपति का पुत्र हूँ । संवाहक[1] की मेरी वृत्ति है, उसी से जीविका चलाता हूँ ।

वसंतसेना: आर्य्य ने बड़ी कोमल कला सीखी है !

संवाहक : आर्य्ये ! कला सीखी है कि इससे तो रोटी चलती है ।

चेटी : आपने बड़े दीन हो कर उत्तर दिया । अच्छा कहिये ।

संवाहक : क्या कहूँ आर्य्ये ! घूमते-फिरतों से घर पर इस अपूर्व देश की प्रशंसा सुनी । दर्शन के कौतूहल से यहाँ आ गया । यहाँ भी आ कर मैंने एक आर्य्य की सेवा की । वह बड़े ही दर्शनीय, प्रियवादी, गुप्तदानी तथा परोपकार शीघ्र ही भूल जाने वाले हैं । और क्या कहूँ बस यही समझिये कि वे शरणागतों की बड़े स्नेह से रक्षा करते हैं और उनमें इतनी उदारता है कि अपनी आत्मा को भी वे दूसरे की ही वस्तु समझते हैं। चाहे जो माँग ले उसे भी, वे मना नहीं करने के ।

चेटी : आर्य्या के मन में बसे चारुदत्त के सारे गुणों को चुरा कर उज्जयिनी में ऐसा और कौन व्यक्ति है ?

वसंतसेना : वाह ! चेटी ! वाह ! मैं भी ठीक यही सोच रही थी ।

चेटी : आर्य्य ! रुक क्यों गये ?

संवाहक : आर्य्ये ! दान दे-दे कर वे इस समय......

वसंतसेना : क्या वे अब धनहीन हो गये हैं ?

संवाहक : आपने बिना बताये ही कैसे जान लिया ?

वसंतसेना : मैंने क्या जाना ? गुण और धन का मेल असंभव ही

---

१. देह दबाने वाला—मालिश-चप्पी करने वाला ।

है ? जिन तालाबों का जल पीने के योग्य नहीं रहता, उनमें ही तो जल अधिक रहता है !

चेटी : आर्य्य ! उनका नाम क्या है ?

संवाहक : आर्य्ये ! पृथ्वीमण्डल के उस चन्द्रमा का नाम कौन नहीं जानता ? वे श्रेष्ठि चत्वर में रहते हैं। उनका पूज्य नाम है आर्य्य चारुदत्त !

वसंतसेना : (**हर्ष से आसन से उतर कर**) आर्य्य ! यह आपका अपना घर है। चेटी ! इन्हें बैठने को आसन दे ! पंखा ले ले। आर्य्य को श्रम पीड़ित कर रहा है।

[**चेटी आज्ञा पालन करती है।**]

संवाहक : (**स्वगत**) अहा ! आर्य्य चारुदत्त का नाममात्र लेने से मेरा इतना सम्मान हो रहा है ? धन्य हो, आर्य्य चारुदत्त ! तुम धन्य हो ! धरती पर यदि जीवन सफल है तो एक तुम्हारा ! बाकी सबका तो जीना ही व्यर्थ है। (**वसंतसेना के चरणों पर गिर कर**) आर्य्ये ! बहुत हुआ ! अब आप आसन पर विराजमान हों।

वसंतसेना : (**आसन पर बैठ कर**) आर्य्य ! वह धनवान कहाँ है ?

संवाहक: आदर-सत्कार ही सज्जनों का स्थायी धन है धन कब किसके यहाँ सदैव रहा है ? जो दूसरों का आदर करना जानता है, वही आदर के साधनों को भी जानता है।

वसंतसेना : तो !

संवाहक : उन्होंने मुझे अच्छे वेतन पर नौकर रख लिया। उनके दरिद्र हो जाने पर मैं जुआरी हो गया। फिर दुर्भाग्य से मैं दस सुवर्ण हार गया।

माथुर : मैं बरबाद हो गया ! मुझे लूट लिया गया !

संवाहक : सभिक और जुआरी मुझे खोजते हुए यहाँ आ पहुँचे हैं। आर्य्या ही जो चाहें करें।

वसंतसेना : मदनिके ! पेड़ के आँधी में हिल जाने पर उस पर रहने-वाली चिड़ियाँ भी इधर-उधर आश्रय के लिये उड़ने लगती हैं। आ, इधर आ ! जा, सभिक और जुआरी के हाथ में इस आभूषण को दे दे और कह कि इसे संवाहक ने आपके लिये भिजवाया है। (हाथ से कंकण उतार कर चेटी को देती है।)

चेटी : (ले कर) जैसी आपकी आज्ञा ! (प्रस्थान)

माथुर : हाय मैं लुट गया, मैं बिल्कुल बरबाद हो गया।

चेटी : क्योंकि यही दोनों ऊपर ताक रहे हैं, लंबी साँसें ले रहे हैं। आपस में बातें करते हुए द्वार पर आँखें गड़ाये हैं, यही दोनों सभिक और जुआरी होंगे। (पास जा कर) आर्य्य, प्रणाम करती हूँ।

माथुर : सुखी हो !

चेटी : आर्य्य ! आप दोनों में से सभिक कौन हैं ?

माथुर : हे क्षीणकटि ? मधुर कटाक्ष कर देखने वाली, सुरत बेला में नायक से क्षत अधरों से मनोहर वाणी से बोलने वाली तुम कौन हो ? हमारे पास धन नहीं है, किसी और के पास जाओ !

चेटी : यदि तुम ऐसा सब सोचते हो तो तुम जुआरी नहीं हो। क्या तुम्हारा कोई ऋणी भी है ?

माथुर : हाँ, वह दस सुवर्ण का ऋणी है। उसका क्या हुआ ?

चेटी : उसी के कारण आर्य्या ने अपना यह कंकण दे दिया है। नहीं, नहीं, उसी ऋणी ने भेजा है।

माथुर : (हर्ष से ले कर) अरे ! उस छलपुत्र से कहना कि तुम्हारा

वचन पूरा हुआ। आओ फिर जूआ खेलने चलो।

[दोनों का प्रस्थान]

चेटी : (वसंतसेना के पास जा कर) आर्य्ये! वे दोनों बहुत प्रसन्न हो कर चले गये हैं।

वसंतसेना : अच्छा हुआ। वे गये। अब बंधु भी प्रसन्न हों।

संवाहक : आर्य्ये! यही बात है तो लाइये आपकी देह की चप्पी करूँ।

वसंतसेना : आर्य्य! जिनके कारण आपने यह कला सीखी है, उन्हीं की सेवा करें।

संवाहक : (स्वगत) आर्य्या ने इसे चतुराई से अस्वीकार कर दिया। अब मैं इनके उपकार का बदला कैसे चुकाऊँ? (प्रगट) आर्ये! मैं इस जुआरी के अपमान से अब बौद्धभिक्षु हो जाऊँगा। आर्य्या सदैव इस बात को याद रखेंगी कि जुआरी संवाहक बौद्ध श्रमण हो गया।

वसंतसेना : आर्य्य इतना साहस क्यों?

संवाहक : आर्य्ये! मैंने निश्चय कर लिया! जूए के कारण मैं सभी मनुष्यों के सामने अपमानित हुआ। अब इस समय सिर मुंडा कर मैं आनंद से सबके सामने निर्भय हो कर राजमार्ग पर घूमूँगा।

[नेपथ्य में कोलाहल]

संवाहक : (सुन कर) अरे! यह क्या है? (आकाश की ओर देख कर) क्या कहा? वसनसेना का खुण्टमोडक नाम का दुष्ट हाथी तंग करता है? अरे! जाकर आर्य्य के गधगज को देखूँगा। लेकिन फिर मुझे इससे क्या? मैं अपने निश्चय को ही पूरा करूँ।

[प्रस्थान]

[इसके उपरांत भयानक परंतु स्वच्छ वस्त्र पहने कर्णपूरक पटी—छोटा पर्दा—हटाये बिना ही आता है ।]

कर्णपूरक : कहाँ है आर्य्या ! कहाँ है ?

चेटी : अरे दुर्जन ! तुम्हारी ऐसी घबराहट का ऐसा क्या कारण है कि तुम सामने बैठी आर्य्या को भी नहीं देखते !

कर्णपूरक : (देख कर) आर्य्ये ! प्रणाम !

वसंतसेना : कर्णपूरक ! बड़े प्रसन्न दिखते हो ! क्या बात है ?

कर्णपूरक : (सविस्मय) आर्य्ये ! तुम वंचित रह गईं कि आज तुमने मेरा पराक्रम नहीं देखा ।

वसंतसेना : क्या ? क्या ? कर्णपूरक ! बता तो !

कर्णपूरक : सुनो आर्य्या ! तुम्हारा खुण्टमोडक नामक दुष्ट हाथी अपने बाँधने के खंभे को उखाड़ कर, प्रधान महावत को दे मार कर उपद्रव करता राजमार्ग पर निकल गया । लोग-बाग चिल्लाने लगे—सड़क से बच्चों को हटा लो । तुरंत पेड़ पर या घरों पर चढ़ जाओ ! क्या तुम्हें नहीं दीखता कि दुष्ट हाथी सामने से आ रहा है ? स्त्रियाँ भागने लगीं । चरणों के नुपूर झंकारने लगे । मणियों से गूँथी गई करधनी और छोटे-छोटे रत्नों से जटित अति मनोरम कंकण टूटने लगे । उसके बाद सूंड, चरण तथा दांतों की मार से कमलिनी से भरे तालाब की तरह उज्जयिनी को मँथते हुए उस दुष्ट हाथी ने परिव्राजक को पकड़ लिया । साधू के दण्ड-कमण्डल बिखर गये । हाथी के जल से भींगे भयानक दाँतों के बीच साधू को देख कर लोग चिल्लाये : 'हाय ! संन्यासी मारा जा रहा है !'

वसंतसेना : (उद्वेग से) हाय अनर्थ हो गया ! अनर्थ हो गया !

कर्णपूरक : घबराओ मत । आर्य्ये सुनो ! जंजीरों को तोड़-फोड़ कर

ग्रर-उधर दाँतों में पकड़े हुए संन्यासी को ऊपर उठाते देख कर
ो, कर्णपूरक ने—नहीं नहीं, ग्रापके ग्रन्न से पले हुए इस दास
ग्राँये पाँव से जुग्रारी संवाहक संन्यासी को बढ़ावा दे-दे कर,
ग्र ही बाजार मे लोहे का डण्डा ले कर उस दुष्ट हाथी को
कारा ।

: फिर ? क्या हुग्रा फिर ?

विन्ध्यपर्वत के शिखर जैसे उस विशाल क्रुद्ध हाथी को
के डण्डे से मार-मार कर मैंने उसके दाँतों के बीच से उस
जक को बचा लिया ।

तुमने बड़ा ग्रच्छा काम किया । फिर क्या हुग्रा ?

फर ! ग्रार्य्ये ! धन्य है कर्णपूरक धन्य है, केवल यही
ई सारी उज्जयिनी नगरी एक ग्रोर से ऐसे झुक गई
बोझ से नाव दब जाती है । फिर ग्रार्य्ये ! किसी
ग्रपने शरीर के उन स्थानों को छुग्रा जहाँ वह कभी
पहनता होगा ग्रौर कुछ न पा कर उसने मेरे ऊपर
फेंक दिया ।

रक ! जरा देख तो ! इस उत्तरीय से चमेली के
ग्राती है या नहीं ?

हाथी के मद की गंध के कारण मुझे उत्तरीय
क से पता नहीं चल रहा है ।

कसी का नाम भी लिखा है या नहीं ?

ग्राप ही देखिये ग्रार्य्ये !

[उत्तरीय देता है ।]

चारुदत्त का है ।

[पढ़ कर बड़े चाव से ग्रोढ़ती है ।]

चेटी : कर्णपूरक ! आर्य्या पर यह कितना फबता है ?

कर्णपूरक : हाँ, बड़ा जँचता है ।

वसंतसेना : कर्णपूरक ! ले । यह तेरा इनाम है ।

[**आभूषण देती है ।**]

कर्णपूरक : (**नम्रता से ले कर और प्रणाम करके**) अब तो यह आर्य्या पर बहुत ही जँच रहा है ।

वसंतसेना : कर्णपूरक ! इस समय आर्य्य चारुदत्त कहाँ हैं ?

कर्णपूरक : इसी रास्ते से वे घर की ओर गये हैं ।

वसंतसेना : चेटी ! आओ ! द्वार पर के अलिंद[1] में चढ़कर आर्य्य को देखें ।

[**प्रस्थान**]

[**जुआरी संवाहक नामक दूसरा अङ्क समाप्त**]

---

१. बराम्दा

तीसरा अङ्क

[**चेट का प्रवेश**]

चेट : सेवकों पर दया करने वाला स्वामी धनहीन होने पर भी अधिक सुख देता है। धन के मद में चूर दुर्जन स्वामी बहुत भयानक होता है और उसकी सेवा का फल भी दुखदायी होता है। सचमुच हरे धान का लोभी साँड बार-बार हटाये जाने पर भी उसी खेत में चरने पहुँचता है। परस्त्रीगामी को उसके बुरे व्यसन से कोई नहीं छुड़ा सकता। न कोई पक्के जुआरी से उसकी लत छुड़ा सकता है। किसी में कोई प्राकृतिक दोष आ गये हों तो उससे उन्हें कौन दूर कर सकता है ? कितनी देर हो गई आर्य्य चारुदत्त को गाना सुनने गये हुए। कितनी रात बीत गई। आधी तो बीत चली। और अभी भी वे आये नहीं हैं। क्या करूँ। तब तक बाहर के बैठक में ही सोऊँ।

[**सोता है। चारुदत्त और विदूषक का प्रवेश**]

चारुदत्त : वाह-वाह ! रेभिल भी क्या गाता है ? यह वीणा क्या

है ? समुद्र से भले ही इसकी उत्पत्ति नहीं हुई, पर फिर भी यह एक अपूर्व रत्न है। क्योंकि उत्कण्ठा से भरे व्यक्ति के लिये उसके मन के अनुकूल यह अच्छी मित्र है। निर्दिष्ट स्थान पर गुप्त प्रेमी के आने में देर होने के समय मन बहलाने के लिये यह बहुत अच्छा साधन है। वियोगी का धैर्य्य रखने में तो यह उसकी प्रिया जैसी है और प्रेमियों का स्नेह बढ़ाने में तो इससे अधिक सुखकर वस्तु और क्या होगी ?

विदूषक : अब चलिये, घर चलें।

चारुदत्त : रेभिल विद्वान है। उसने बहुत अच्छा गाया।

विदूषक : मुझे तो संस्कृत पढ़ती स्त्री और पतली आवाज़ में गाता पुरुष—इन दोनों को देख कर हँसी आती है। पहली तो ऐसा सू-सू शब्द अधिक करती है जैसे नई नाक छिदी पहली बार ब्याई गैया करती है। और पतली आवाज़ में गाता पुरुष सूखे फूलों की माला पहने बूढ़े पुरोहित की तरह मंत्र जपता मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता।

चारुदत्त : मित्र ! विद्वान रेभिल ने तो आज बहुत ही अच्छा गाया। पता नहीं तुम्हें क्यों पसन्द नहीं आया ! वह गाना था ! कितना प्रेम-भरा, मधुर, स्पष्ट, भाव-भरा, कोमल, चित्ताकर्षक ! मेरे इतनी प्रशंसा से लाभ ही क्या ? रेभिल ने कहीं से छिप कर गाया होता तो हम सब यही समझते कि कोई स्त्री गा रही है। देखो ! गाना तो समाप्त हो चुका फिर भी स्वरों का उतार-चढ़ाव, उसकी मधुरिमा, वीणा की प्यारी आवाज़, उसकी स्वर-परंपरा, उठान में ऊँचाई, उतार में कोमलता, आवाज़ की वह लोच, और फिर आलापन ! अरे मेरे मन में सब ज्यों का त्यों अब तक गूँज रहा है !

विदूषक : मित्र ! बाज़ार की गलियों में कुत्ते जगह-जगह सुख से सो रहे हैं। अब तो घर ही चलना ठीक है। (**आगे देख कर**) मित्र ! देखो-देखो ! अंधकार को अवकाश देते हुए भगवान चंद्र आकाशरूपी महल से उतर रहे हैं।

चारुदत्त : यही बात है। पानी में डूबे हुए वनगज के पैने दाँत की नोंक-सा यह उन्नतिशील चद्रमा अधकार को अवकाश दे कर अस्ताचल की ओर जा रहा है।

विदूषक : यही हमारा घर है। अरे दरवाज़ा खोलो ! वर्द्धमानक ! अरे ओ वर्द्धमानक !

चेट : यह तो आर्य्य मैत्रेय की आवाज़ सुनाई पड़ती है। तब तो आर्य्य चारुदत्त आ गये ! किवाड़ खोल दूँ। (**खोल कर**) आर्य्य ! प्रणाम ! आर्य्य मैत्रेय ! तुम्हें भी प्रणाम करता हूँ। इस बड़े आसन पर आप लोग विराजें।

[**दोनों प्रवेश कर बैठते हैं।**]

विदूषक : वर्द्धमानक ! पैर धुलवाने को रदनिका को बुलाओ।

चारुदत्त : (**दयापूर्वक**) सोये हुए को क्यों जगाते हो ?

चेट : आर्य्य मैत्रेय ! मैं पानी डालता हूँ, तुम चरण धोओ।

विदूषक : (**क्रोध से**) सखे ! यह दासीपुत्र हो कर भी पानी लेता है और मुझसे पैर धुलाने को कहता है ?

चारुदत्त : मित्र मैत्रेय ! तुम पानी ले लो। वर्द्धमानक पैर धो देगा।

चेट : आर्य्य मैत्रेय ! जल डालिये।

[**विदूषक जल डालता है। चेट चारुदत्त के पैर धो कर हट जाता है।**]

चारुदत्त : ब्राह्मण के पाँव धुलाओ।

विदूषक : मुझे पादोदक से क्या ? मैं तो पिटे हुए गधे की तरह फिर धरती पर ही लेट रहूँगा।

चेट : आर्य्य मैत्रेय ! आप तो ब्राह्मण हैं ।

विदूषक : जैसे साँपों में सबसे गया-बीता विषहीन डुण्डुभ होता है, वैसे ही मैं भी ब्राह्मणों में सबसे गया-बीता हूँ ।

चेट : नहीं आर्य्य मैत्रेय ! मैं तो धुलाऊँगा ही (**पैर धुलवा कर**) आर्य्य मैत्रेय ! मैंने दिनभर इस आभूषण की रक्षा की है । अब रात को आपकी बारी है । लीजिये ।

[**दे कर प्रस्थान**]

विदूषक : यह आभूषण अभी यहीं है ? क्या इस उज्जयिनी में चोर नहीं हैं ? इस नीच को निद्रा रूपी चोर भी नहीं उड़ाता ? मित्र ! इसे अन्तःपुर में भेज दूँ ।

चारुदत्त : इसे वहाँ भेजना उचित नहीं है, क्योंकि यह वेश्या की धरोहर है । जब तक यह वसंतसेना को लौटा नहीं दिया जाता, तब तक तो हे ब्राह्मण ! तुम ही इसकी रक्षा करो ।

[**निद्रा का अभिनय करता हुआ बड़बड़ाता है—कैसा स्वर था, कैसा उतार-चढ़ाव था······**]

विदूषक : क्या आपको नींद आ रही है ?

चारुदत्त : हाँ । आँखों में बसने वाली नींद माथे की ओर से आ रही है । दिखाई न देने वाली यह चंचला नींद बुढ़ापे की तरह आदमी की शक्ति छीन कर खूब वृद्धि पाती है ।

विदूषक : तो फिर सोयें ।

[**सोने का अभिनय करता है ।**]

[**शर्विलक का प्रवेश**]

शर्विलक : अपनी शिक्षा के कौशल और शक्ति के प्रभाव से, इस शरीर की विशालता आराम से जिसमें से निकल जाये, ऐसी

सेंध फोड़ कर, बगलों पर सरक कर, केंचल छोड़ कर पतले होते हुए साँप की तरह मैं अन्दर घुस जाऊं।

[आकाश की ओर देख सहर्ष]

अरे! क्या भगवान् चंद्र अस्ताचल की ओर जा रहे हैं? पहरेदारों की शङ्का की जगह और दूसरे के घर को दूषित करने में मैं निपुण ठहरा। घने अंधेरे से सबको ढँकने वाली यह रात मुझे माता की भाँति स्नेह के आवरण में ढँकती है। बाग़ में सेंध लगा कर मैं चहार दीवारी में तो घुस गया हूँ। अब अन्त:पुर में भी सेंध फोड़ूँ। मनुष्यों के सो जाने पर होने वाली चोरी को लोग भले ही नीच काम कह लें, क्योंकि इसमें विश्वस्त जनों का माल गुम हो जाने पर अपमान होता है! वे भले ही चोरी कहें, पराक्रम नहीं। लेकिन यह धूर्तता स्वतन्त्र है और उत्तम है। इस काम में किसी का दास बन कर हाथ नहीं जोड़ना पड़ता और यह काम तो बहुत प्राचीनकाल से होता आ रहा है—द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुए युधिष्ठिर के पुत्रों को मारा था। अब मैं सेंध कहाँ फोड़ूँ, वह भीत की कौन-सी जगह है जहाँ निरन्तर पानी पड़ने से शिथिलता आ गई है। वहाँ सेंध लगाते समय शब्द नहीं होगा। जगह तो वही ठीक है जहाँ से मनुष्य मुझे तो नहीं देख सकें, पर मैं खूब बड़ा छेद फोड़ लूँ। कौन-सी जगह चूने के मिट्टी बन जाने से कमज़ोरी आ गई है ऐसी जैसे कोई मिट्टी का ढेला हो। वह कौन-सी जगह है जहाँ स्त्रियाँ आती-जाती न हों। वहीं मुझे चोरी में सफलता मिलेगी। यहाँ (दीवाल छू कर) नित्य सूर्य को जल देने से मिट्टी नरम पड़ गई है और यहाँ तो चूहों ने भी धूल का ढेर लगा दिया है। चलो, अपने आप सारा

काम बन गया। कार्त्तिकेय[1] के पुत्र चोरों की सिद्धि का यह पहला लक्षण है। भगवान् कनकशक्ति ने सेंध फोड़ने के चार नियम बताये हैं, जैसे भीत की ईंटें पकी हों तो उन्हें खींचना चाहिये, ईंटें कच्ची हों तो खींचना नहीं, काटना चाहिये। काठ की भीत हो तो चीरना चाहिये और मिट्टी-संपुटित हो तो उसे खींचना ठीक है। यहाँ तो पकी ईंटें हैं। खींचना चाहिये। खिले हुए कमल, सूर्य्यमंडल, अर्द्धचंद्र, फैले हुए तालाब, त्रिकोण स्वस्तिक या पूर्ण कुम्भ-सी सेंध कहाँ फोड़ूँ, कहाँ अपनी चतुराई दिखाऊँ कि कल नगरवासी जब देखें तो देखते ही रह जायें ? इस पकी ईंटों के घर में तो पूर्ण कुम्भ की-सी सेंध हो ठीक रहेगी।

तो सेंध फोड़ूँ। रात में इस जर्जर भीत को तोड़ कर भयंकर सेंध निकालूँ। सबेरे लोग नगरवासी चोरी को बुरा बतावेंगे, लेकिन मेरे कौशल की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकेंगे। इच्छा पूरी करने वाले कुमार कार्त्तिकेय को नमस्कार करता हूँ। देवव्रत परायण ब्रह्मण्यस्वरूप भगवान् कनकशक्ति को नमस्कार करता हूँ। भास्करनन्दी और योगाचार्य को प्रणाम करता हूँ, जिनका मैं प्रथम शिष्य हूँ। वे प्रसन्न हो जायें तो मेरी योगसाधना पूर्ण हो गई समझो। योगसाधना से तो मुझे रक्षक देख भी नहीं सकेंगे। और अगर कहीं किसी प्रकार शरीर पर शस्त्र का आघात भी लगा तो चोट तो न लगेगी !

[सेंध खोदता है।]

हाय-हाय ! मैं तो नापने की रस्सी ही भूल आया। (सोच कर) अच्छा ! तब जनेऊ ही रस्सी का काम देगा।

---

१. चोर अपने को कार्त्तिकेय के पुत्र मानते हैं।

ब्राह्मण के लिए तो जनेऊ बहुत ही काम की चीज़ है और फिर हमारे लिए तो बहुत ही अधिक है। इसी से तो संध फोड़ते समय भीत नापी जाती है। इसकी मदद से तो शरीर में कसे गहने निकाले जाते हैं। यह किल्ली लगा कर मज़बूती से बंद किये किवाड़ों को खोलने में सहायता करता है और अगर विषैले जीव और साँप काट खायें तो यह कटे स्थान को बाँधने के काम आता है। नाप कर काम शुरू करता हूँ। (करके देख कर) अब इस संध में से एक ही ईंट निकालना बाकी रह गया है। धिक् कष्ट! साँप ने काट खाया। (यज्ञोपवीत से उँगली बाँध कर जहर चढ़ने का-सा अभिनय करता है। दवा लगा कर) अब ठीक हुआ। (फिर संध फोड़ कर और देख कर) अरे, दीपक जल रहा है! सोने की-सी दीपक की पीली किरण संध से निकल कर बाहर आ रही है। अंधेरे से घिरी हुई वह किरण कसौटी पर सोने की रेखा-सी लग रही है! (फिर संध फोड़ कर) संध फूट चुकी। अब इसमें घुस जाऊँ, नहीं, पहले मुझे नहीं घुसना चाहिये। नकली पुरुष को घुसाऊँ। (वैसा करके) अरे! कोई नहीं है! कार्त्तिकेय को नमस्कार! (प्रवेश करके देख कर) अरे! दो पुरुष सो रहे हैं! अच्छा अपनी रक्षा के लिये पहले द्वार खोल लूँ। घर की जीर्णावस्था के कारण किवाड़ आवाज़ करते हैं। तब पानी डालना चाहिये। क्या यहाँ पानी नहीं है? (इधर-उधर देख कर, जल पा कर, उसे ले कर सशंक-सा द्वार पर छींटे देता है।) कहीं पानी धरती पर न गिर जाये कि आवाज़ हो जाये। (पीछे की तरफ देख कर किवाड़ खोल कर) अच्छा, अब परीक्षा करनी चाहिये। यह दोनों नकली नींद में हैं या सचमुच सो रहे हैं? (परीक्षा करके) ये तो सचमुच सोये हुए हैं। यह पुरुष तो

बिना शंका के अच्छी तरह साँस ले रहा है। यह ठीक समय पर साँस खींचता है। न आँखें हिलती हैं, न भीतर से पुतली ही चचल है। आंखें ठीक बंद हैं। सारा शरीर निढाल है और अंग बिस्तर से बाहर लटक गये हैं। अगर इसकी नींद नकली होती तो दीपक का उजाला सामने देख कर यह उसे सह नहीं पाता। (**चारों तरफ देख कर**) अरे यह मृदंग है। दर्दुर बाजा भी है। पणव, वीणा, बाँसुरियाँ, पुस्तकें…यह क्या किसी नाच-गाना सिखानेवाले नाट्याचार्य्य का घर है ? या मैं सिर्फ़ बड़ा घर देख कर घुस आया हूँ और वास्तव में यहाँ का निवासी निर्धन है ? या यह राजा के भय और चोरों के डर से धन धरती में गाड़ कर रखता है ! लेकिन भूमि में गाड़ा गया धन सदैव शर्विलक का ही होता है। अच्छा बीज फेंकता हूँ। (**फेंक कर**) फेंका हुआ बीज भी नहीं फैलता ! सचमुच ! यह तो दरिद्र ही है। तब ठहरना व्यर्थ ही है।

विदूषक : (**स्वप्न देखता हुआ**) मित्र ! सेंध मालूम पड़ती है। मैं चोर को देख रहा हूँ। इसलिये इस सोने के गहने को आप रख लीजिये।

शर्विलक : तो क्या मुझे यहाँ आया देख कर यह मुझे गरीब समझ कर उपहास करता है ? क्या इसे मारूँ, यह मेरी तुच्छता पर हँस रहा है। (**देख कर**) जीर्ण अंगोछे में बँधा, दीपक के प्रकाश में चमकता हुआ, यह तो सचमुच सोने का आभूषण है। अच्छा, इसे ले लूँ। पर यह भी मुझ जैसा ही दीन-हीन सज्जन है। इसे मैं कष्ट क्यों दूँ ? नहीं, मैं जाता हूँ।

विदूषक : मित्र ! तुम्हें गौ और ब्राह्मण की शपथ है, जो तुम इस सोने के गहने को न लो।

शर्विलक : भगवती गौ और ब्राह्मण की शपथ का उल्लंघन करना

उचित नहीं है । ले लूँ । लेकिन दीपक जल रहा है । पर मेरे पास दीपक बुझाने के लिये अग्नि का कीड़ा है । उस कीड़े को छोड़ दूँ । यही उचित स्थान और समय है उसके लिये। लो ! मैंने कीड़ा छोड़ दिया । अब यह विचित्र रूप से मण्डलाकार दीपक पर मंडरा उठा । कीड़े ने अपने पंखों की हवा से दीपक को बुझा कर अंधकार कर दिया । क्या मैंने भी इस ब्राह्मण के कुल में ऐसे ही अधकार नहीं कर दिया ? मैं चारों वेद के ज्ञाता तथा दान न लेने वाले ब्राह्मण का पुत्र शर्विलक हूँ, फिर भी वेश्या मदनिका के लिये मैं यह अनुचित कार्य कर रहा हूँ । अब मैं ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर लूँ ।

[**आभूषण लेने की इच्छा करता है ।**]

विदूषक : वयस्म ! तुम्हारी उँगलियाँ ठंडी हैं ।

शर्विलक : मेरी कैसी असावधानी है । पानी छूने से उँगलियाँ ठंडी हो गई हैं । अच्छा, हाथों को कांख में दबा कर गर्म कर लूँ ।

[**अभिनयपूर्वक दायाँ हाथ काँख में दबा कर गर्म करके आभूषण लेता है ।**]

विदूषक : ले लिया ?

शर्विलक : इस ब्राह्मण की प्रार्थना टाली नहीं जा सकती, इसलिये ले लिया।

विदूषक : सब कुछ बेच कर निश्चित व्यापारी की भाँति अब मैं सुख से सोऊँगा ।

शर्विलक : महाब्राह्मण ! सैकड़ों वर्षों तक सोते रहो । मुझे शोक है कि मैंने वेश्या मदनिका के लिये इस प्रकार ब्राह्मण-कुल को घोर अंधकार में गिरा दिया। अपनी आत्मा का ही पतन कर डाला । वह निर्धनता जिसमें अकथित पौरुष हो निस्संदेह उसे धिक्कार है । मैं जिस नीच कर्म की निंदा करता हूँ, स्वयं ही

उसे करता हूँ ? तो अब मदनिका को दासीत्व-बंधन से छुड़ाने के लिये मैं वसंतसेना के घर चलता हूँ।

[घूम कर और देख कर]

अरे ! किसी के पाँवों की आवाज़-सी आ रही है ? कहीं प्रहरी न आते हों ! अच्छा, कुछ देर चुपचाप रुकना चाहिये। क्या मुझ शर्विलक को भी प्रहरियों का भय हो ? मैं चुपचाप भागने में बिल्ली, शीघ्र भागने में हरिण, किसी की वस्तु झपटने में बाज, सोये या जागे हुए मनुष्य के पराक्रम को देखने में कुत्ता, संकरे रास्ते में सरक कर भागने में साँप, शरीर बदलने और वेश बदलने में साक्षात् माया, भाषा बदलने में मूर्त्तिमती वाणी, रात्रि के लिये दीप, आपत्ति में सियार, भूमि के लिये घोड़ा और जल के लिये नाव के समान हूँ। मैं भागने में सर्प, धैर्य्य में पर्वत, शीघ्र भागने में गरुड़, एक बार ही में संसार को देखने में खरहा, ग्रहण करने में भेड़िया तथा पराक्रम में सिंह के समान हूँ।

रदनिका : (प्रवेश कर) हाय ! हाय ! बाहर बैठक में वर्द्धमानक सोया हुआ था। वह भी यहाँ दिखाई नहीं पड़ता। आर्य्य मैत्रेय को ही बुलाऊँ।

[घूमती है।]

शर्विलक : (रदनिका को मार डालना चाहता है। देख कर) अरे ! यह तो स्त्री है ! तो फिर मैं चलूँ।

[प्रस्थान]

रदनिका : (भयभीत-सी जा कर) हाय-हाय ! घर से सेंध मार कर चोर निकला जाता है। (विदूषक के पास जा कर) आर्य्य मैत्रेय ! उठो ! हमारे घर में चार सेंध मार कर निकल गया। उठो ! उठो !

विदूषक : (उठ कर) अरी दासी की बेटी ! क्या बकती है कि चोर सेंध लगा कर निकल गया ?

रदनिका : हाय ! परिहास मत करो। इसे क्यों नहीं देखते ?

विदूषक : अरी दासी की बेटी ! क्या कहती है ? बिल्कुल दरवाजा-सा बना दिया है ! मित्र चारुदत्त ! उठा-उठो ! हमारे घर में सेंध फोड़ कर चोर निकल गया।

चारुदत्त : अच्छा-अच्छा ! परिहास करने से लाभ ही क्या ?

विदूषक : मैं परिहास नहीं करता। आप तनिक देखिये तो !

चारुदत्त : कहाँ है सेंध।

विदूषक : यह देखिये यहाँ।

चारुदत्त : (देख कर) वाह ! क्या देखने लायक सेंध है ! ऊपर से ईंट हटा दी गई है। ऊपर से पतली मगर बीच से कितनी चौड़ी है। एक अयोग्य व्यक्ति के प्रवेश से ही ऐसा लगता है जैसे इस विशाल भवन का हृदय विदीर्ण हो गया हो ! इस काम में भी इतना कौशल होता है ?

विदूषक : मित्र ! यहाँ तो दो ही आदमी सेंध लगा सकते हैं, या तो कोई परदेसी होगा या किसी ने इस कला को सीखने के लिये ऐसा किया होगा ! वर्ना इस उज्जयिनी नगरी में हमारे घर के वैभव को कौन नहीं जानता !

चारुदत्त : अनजाने ही किसी विदेशी या नये चोर ने मेरे घर सेंध लगाई। धनहीन होने के कारण मैं निश्चिंत सो रहा था, इसलिये मुझे वह नहीं जान सका। इस विशाल और भव्य घर को देख कर पहले उसे कितनी आशा हुई होगी किन्तु काफ़ी देर बाद जब सेंध फोड़ कर वह भीतर घुसा होगा तब कितना निराश हो कर गया होगा ? वह अपने मित्रों से क्या कहेगा ? कि

चारुदत्त के घर में घुसने पर मुझे कुछ भी नहीं मिला।

विदूषक : आप भी उस अधम चोर की इतनी चिंता ले बैठे ? उसने सोचा होगा विशाल भवन है, इसमें से रत्नालंकार या सोने के गहने ले जाऊँगा। (याद करके दुख के साथ स्वगत) वह सोने का आभूषण कहाँ है ? (फिर सोच कर प्रगट) मित्र ! तुम सदा कहते थे कि मैत्रेय मूर्ख है। मैत्रेय नादान है ! मैंने कितना अच्छा किया कि आभूषण पहले ही तुम्हारे हाथ में दे दिया ! नहीं तो उस नीच चोर ने उसे चुरा ही लिया होता !

चारुदत्त: फिर व्यर्थ का परिहास प्रारंभ किया ?

विदूषक : अरे तो क्या मैं इतना मूर्ख हूँ कि हास-परिहास का समय और स्थान भी नहीं जानता ?

चारुदत्त: तुमने मुझे कब दिया था ?

विदूषक: अरे, जब तुमने कहा था कि तुम्हारी उँगलियाँ शीतल हैं ?

चारुदत्त: शायद तुमने ही दे दिया हो ! (चारों ओर देख कर हर्ष से) भाग्य से मैं तुम्हें एक शुभ संवाद देता हूँ।

विदूषक : क्या वह चोरी नहीं गया ?

चारुदत्त: चला गया।

विदूषक : तो यह क्या शुभ समाचार है !

चारुदत्त: क्यों ? क्या चोर प्रसन्न हो कर नहीं चला गया ?

विदूषक : पर वह धरोहर थी !

चारुदत्त: क्या कहा ! धरोहर ! आह···

[मूर्च्छित-सा हो जाता है।]

विदूषक : धैर्य्य धारण करो मित्र ! यदि चोरों ने धरोहर चुरा ली तो तुम क्यों चक्कर खा कर गिरते हो ?

चारुदत्त: (लंबी सांस ले कर) मित्र ! असली बात पर विश्वास भी

कौन करेगा ? सभी मुझे ही अपराधी ठहरायेंगे ! यह दीन-दरिद्रता तो इस संसार में सभी की आशंकाओं की जड़ है। उफ़ ! कितनी भयानक बात है ! यदि दैव ने मेरे सारे धन को छीन लिया था तो उस कठोर ने इस समय मेरे चरित्र को कलंकित क्यों कर दिया !

विदूषक : मैं कहूँगा धरोहर रखी किसने ? किसने ली ? कोई साक्षी है !

चारुदत्त : तो क्या अब मुझे झूँठ बोलनी पड़ेगी ? भीख माँग-माँग कर धरोहर का धन कमा कर चुका दूँगा, परंतु चरित्र को कलंकित करने वाली झूँठ का सहारा नहीं लूँगा।

रदनिका : मैं आर्य्या धूता को जा कर सब बताती हूँ।

[**चेटी के साथ वधू धूता का प्रवेश ।**]

वधू : (**उद्विग्नता से**) आर्य्यपुत्र आर्य्य मैत्रेय के साथ सकुशल तो हैं ? शरीर पर कोई चोट-वोट तो नहीं है ?

चेटी : स्वामिनी ! सब ठीक है पर उस वेश्या के उस अलंकार को चोर ले गया।

[**वधू मूर्च्छित-सी होती है ।**]

चेटी : आर्य्या धूता ! धैर्य्य धरिये !

वधू : (**लंबी सांस ले कर**) क्या कहती है चेटी ? आर्य्यपुत्र सकुशल हैं ? यही बहुत है कि शरीर से सुरक्षित हैं। चरित्र से तो नहीं रहे। अब उज्जयिनी के लोग कहेंगे : 'गरीबी के कारण आर्य्य चारुदत्त ने ही ऐसा नीच कार्य्य किया है'। (**ऊपर देख कर लंबी साँस ले कर**) भाग्य देवता ! कमल के पत्ते पर गिरे हुए जलबिंदु की भाँति चंचल दरिद्र के भाग्य से खेल करते हो ? यही मेरे नैहर की एक रत्नावली बची है। अत्यंत विशालमनस होने से वे

इस स्त्रीधन को नहीं लेंगे। दासी। जरा आर्य्य मैत्रेय को तो बुला।

चेटी : आर्य्या धूता की जैसी आज्ञा ! (**विदूषक के पास जा कर**) आर्य्य मैत्रेय ! आपको आर्य्या धूता बुला रही हैं।

विदूषक : कहाँ हैं वे ?

चेटी : यहीं हैं। चलिये।

विदूषक : (**आ कर**) आपका कल्याण हो !

वधू : आर्य्य ! प्रणाम करती हूँ। आर्य्य ! तनिक मेरी ओर देखिये।

विदूषक : श्रीमती ! यह लीजिये। कहिये !

वधू : आर्य्य ! इसे ले लें।

विदूषक : यह क्या है ?

वधू : मैंने रत्नषष्ठी व्रत किया है। उसमें अपनी संपत्ति के अनुसार ब्राह्मण को दान दिया जाता है। मैंने वह दान नहीं किया है। इसी लिये यह रत्नावली ले लें।

विदूषक : (**ले कर**) कल्याण हो ! आर्य्य चारुदत्त से कहने जाता हूँ।

वधू : आर्य्य मैत्रेय ! मुझे लज्जित न करें।

[**प्रस्थान**]

विदूषक : (**आश्चर्य्य**) धन्य है इनकी महान उदारता !

चारुदत्त : अरे ! मैत्रेय विलंब कर रहा है। कहीं वेदना के कारण कोई न करने लायक काम न कर बैठे।[1]

विदूषक : (**आ कर**) मैं यह लाया हूँ (**रत्नावली दिखाता है।**)

चारुदत्त : यह क्या है ?

विदूषक : अपने योग्य पत्नी पाने का फल।

---

१. आत्महत्या आदि।

चारुदत्त : क्या ब्राह्मणी मुझ पर दया करती है ? कितना दुख है ! मैं कितना दरिद्र हो गया हूँ ? भाग्य के दोष से धन का अभाव हो जाने से मुझे स्त्रीधन दे कर पत्नी ने दया की है ! कार्य्य से पुरुष स्त्री जैसा हो जाता है और कार्य्य से ही स्त्री पुरुष बन जाती है। किंतु मैं दरिद्र कहाँ हूँ ? जैसा जो कुछ पति के पास हो उसी के अनुसार घर चलाने वाली पत्नी, सुख-दुख में एक-से ही भाव रखने वाला आप जैसा मित्र और सत्य का न छोड़ना यह सब तो दरिद्रता में दुर्लभ वस्तु हैं। मेरे पास तो सभी कुछ है ! मैत्रेय ! इस रत्नावली को ले कर वसंतसेना के पास जाओ। और उससे मेरी ओर से कहना कि मैं भ्रमवश आपके सुवर्ण अलंकार को अपना समझ कर जूए में हार गया हूँ। उसके बदले में आप यह रत्नावली ले लें।

विदूषक : यह आप क्या करते हैं ? हमने जिसे बेच कर खाया नहीं, जिसका कोई उपयोग नहीं किया, जिसका थोड़ा-सा मूल्य है, और जिसे चोरों ने चुराया है, उस वस्तु के लिये ऐसी अमूल्य रत्नावली दे रहे हैं, जिसका एक-एक रत्न चारों समुद्र मथ-कर रत्न निकाल कर सर्वश्रेष्ठ चुन-चुन कर रखा गया है !

चारुदत्त : यह बात नहीं है मित्र ! जिस विश्वास से वसंतसेना ने धरोहर हमारे पास रखी थी, यह अमूल्य रत्नावली तो उस विश्वास के लिये दी जाती है, न कि सोने के आभूषण के लिये। मित्र ! तुम्हें मेरे शरीर की कसम है। तुम इसे उसको दिये बिना न लौटना ! वर्द्धमानक ! इन ईंटों से इस सेंध को शीघ्र अच्छी तरह भर दो। चोर के घर में घुसने की बदनामी को क्यों न मिटा डाला जाये ? सखे मैत्रेय ! तुम भी निडर हो कर उदारता से सब कुछ कह देना।

विदूषक : अरे क्या दरिद्र भी निडर हो कर बोलता है ?

चारुदत्त : मैं दरिद्र नहीं हूँ मित्र ! अनुकूल पत्नी, परमसुहृद् मित्र और सत्य का संरक्षण, सब कुछ मेरे पास है । तुम अब प्रस्थान करो । मैं भी शौचादि से निवृत्त हो कर संध्यावंदन करता हूँ ।

[सबका प्रस्थान]

[संधिच्छेद नामक तृतीय अङ्क समाप्त]

चौथा अङ्क

[**चेटी का प्रवेश**]

चेटी : माता ने मुझे भेजा है कि आर्य्या वसंतसेना के पास जाऊँ। आर्य्या तो मदनिका से बातें करती हुई चित्र में आँखें गड़ाये बैठी हैं। चलूँ उनके पास। (**घूमती है।**)

[**पूर्व नियत स्थान पर मदनिका और वसंतसेना का प्रवेश**]

वसंतसेना : अरी मदनिके ! यह चित्राकृति आर्य्य चारुदत्त से मिलती-जुलती है न ?

मदनिका : बहुत मिलती है।

वसंतसेना : तू कैसे जानती है ?

मदनिका : क्योंकि आपकी स्नेह-भरी दृष्टि उसमें मिल गई है।

वसंतसेना : क्यों री ? क्या वेश्यालय में रहने की वाक्चातुरी से ऐसा कहती है ?

मदनिका : तो क्या आर्य्ये ! जो भी वेश्यालय में रहता है वही झूँठ बोलने में चतुर होता है ?

वसंतसेना : अरी ! अनेक तरह के पुरुषों से संसर्ग होता है तो वेश्याएँ झूँठ बोलने में चतुर हो जाती हैं।

मदनिका : लेकिन जब आपकी आँख और मन इसमें रम गया है तो फिर कारण क्यों पूछती हैं आर्य्ये !

वसंतसेना : अरी ! मैं तो सखियों के उपहासों की रक्षा करती हूँ।

पहली चेटी : (आ कर) आर्य्ये ! माता की आज्ञा है कि द्वार पर बैलगाड़ी आ गई है अतः घूंघट करके आप उसमें जायें।

वसंतसेना : क्यों री ! क्या आर्य्य चारुदत्त मुझे ले जायेंगे ?

चेटी : आर्य्ये ! जिसने बैलगाड़ी में दस हजार के सोने के गहने भेजे थे !

वसंतसेना : कौन है वह ?

चेटी : वही राजा का साला संस्थानक।

वसंतसेना : (क्रोध से) जा-जा ! फिर कभी ऐसा मत कहना।

चेटी : आर्य्ये ! क्रुद्ध न हों ! प्रसन्न हों ! मैं तो केवल संदेश लाई हूँ।

वसंतसेना : मैं ऐसे संदेश पर ही क्रुद्ध होती हूँ।

चेटी : तब जा कर माता से क्या कहूँ ?

वसंतसेना : जा कर यही कहना कि—यदि वे मुझे जीवित देखना चाहती हैं तो फिर माता ऐसी आज्ञा कभी नहीं देंगी।

चेटी : जैसी आपकी आज्ञा।

[प्रस्थान]

शर्विलक : (प्रवेश कर) रात्रि को दोषवती कह कर तथा नींद और राजा के पहरेदारों को जीत कर, रात के बीतने के समय अब मैं सूर्योदय की किरणों से धुँधले पड़ गये चंद्रमा के समान हो गया हूँ।* जब कोई जल्दी चलते मुझे डरा हुआ देखता है,

* चोर दिन में निस्सहाय हो जाते हैं।

या मुझे रुका देख कर मेरी ओर तेजी से आना है, तो ऐसों को देख कर मेरी अपराधिनी आत्मा शंका से भर जाती है। अपने ही दोष के कारण मनुष्य दूसरे पर भी शंका करता है। मैंने मदनिका के कारण यह चोरी की है। किसी घर में इसलिये चोरी नहीं की कि वहाँ परिवार के लोग आपस में बातें कर रहे थे। किसी घर को तो केवल इसीलिये छोड़ दिया कि उसमें केवल स्त्रियाँ ही थीं। यदि राज्य के प्रहरी बगल में आ पहुँचे तो घर में लगे हुए वृक्ष के समान मैं निस्तब्ध हो कर खड़ा हो गया। इस तरह अनेक रीतियों से मैंने रात बिता दी और सूर्य्योदय हो गया।

[**घूमता है।**]

वसंतसेना : अरी ! इस चित्रपट को मेरी शैय्या पर रख कर पंखा ले कर शीघ्र आ।

मदनिका : जैसी आर्य्या की आज्ञा।

[**चित्रपट ले कर प्रस्थान**]

शर्विलक : यही वसंतसेना का घर है। इसमें प्रवेश करना चाहिये। (**प्रवेश कर**) मदनिका क्यों नहीं दिखाई देती ?

[**मदनिका का ताल का पंखा लिये प्रवेश**]

शर्विलक : (**देख कर**) अरे ! मदनिका ! अपने सौंदर्य्य से कामदेव को भी मोहित करती हुई यह साक्षात् रति के समान सुशोभित हो रही है। कामाग्नि से जलते हुए मेरे हृदय पर यह चंदन का शीतल लेप चढ़ाती है। मदनिके !

मदनिका : (**देख कर**) अहा ! शर्विलक ! तुम्हारा स्वागत है शर्विलक ! किधर चले ?

शर्विलक : बताऊँगा ।

[**प्रेम से एक दूसरे को देखते हैं ।**]

वसंतसेना : मदनिका देर कर रही है । कहाँ चली गई ? (**झरोखे से देख कर**) यह तो किसी पुरुष से बैठी बात कर रही है ? ऐसी प्यारभरी आँखों से देख क्या रही है, यह तो उसके रूप को पी रही है । मुझे लगता है यह पुरुष इसे दासीत्व से मुक्त कराना चाहता है । अच्छा है । यह इससे मन भर रमण करे । इनके प्रेम के बीच कोई बाधक न हो । मैं उसे नहीं पुकारूँगी इस समय ।

मदनिका : कहो शर्विलक !

[**शर्विलक सशंक हो कर चारों ओर देखता है ।**]

मदनिका : शर्विलक ! बात क्या है ? ऐसे चौकन्ने-से क्यों हो ?

शर्विलक : तुमसे कुछ गुप्त बात कहूँगा । यह स्थान एकांत है तो न !

मदनिका : हाँ एकांत ही है ।

वसंतसेना : रहस्य की बात है ? तब मैं नहीं सुनूँगी ।

शर्विलक : मदनिके ! क्या वसंतसेना धन पा कर तुम्हें अपने बंधन से मुक्त कर देगी ?

वसंतसेना : यह बात तो मेरे बारे में है ! तब छिप कर इस झरोखे से सुनूँ ।

मदनिका : शर्विलक ! मैंने वसंतसेना से कहा था । उन्होंने कहा था कि यदि वे स्वतंत्र हो जायें तो बिना धन के ही सभी सेवक-सेविकाओं को स्वतंत्र कर देंगी । और फिर बताओ शर्विलक ! तुम्हारे पास इतना धन है ही कहाँ कि तुम मुझे वसंतसेना के बंधन से मुक्त करा सकोगे ?

शर्विलक : क्यों डरती हो ? गरीबी से परेशान होने के कारण तथा

तुम्हारे प्रेम के बस में होने से आज रात मैंने बड़ा साहस किया है।

वसंतसेना : यह वैसे तो प्रसन्न है, किंतु उस अतिसाहस के कारण यह अभी तक उद्विग्न-सा है।

मदनिका : शर्विलक ! क्षणभंगुर स्त्री के कारण दोनों को संशय में डाल दिया ?

शर्विलक : किन दोनों को ?

मदनिका : शरीर और चरित्र दोनों को।

शर्विलक : मूर्खे ! साहस में लक्ष्मी का निवास होता है।

मदनिका : शर्विलक ! तुम्हारा चरित्र निर्दोष है। किन्तु मेरे कारण तुमने अति साहस करके उसके विरुद्ध आचरण नहीं किया है ?

शर्विलक : धन के लोभ में मैंने किसी ऐसी फूलों से भरी लता के समान आभूषण धारण करने वाली स्त्री का तो अपहरण नहीं किया ? न ब्राह्मण के लिये सुरक्षित धन ही चुराया है। न मैंने यज्ञ के लिये संयोजित सामग्री ही ली है। न मैंने कभी धाय की गोद में से किसी बच्चे को उड़ाया है। मेरी बुद्धि करने योग्य और न करने योग्य कार्य्य को पहले अच्छी तरह तोल लेती है। तुम वसंतसेना से जा कर कहो कि यह आभूषण उसी के योग्य है। वह इसे तुम्हारे प्रेम के कारण पहने और इसे गुप्त रखे !

मदनिका : शर्विलक ! शोभा बढ़ाने वाला आभूषण गुप्त कैसे रखा जा सकता है ? अच्छा लाओ उसे देखूँ !

शर्विलक : यह लो !

मदनिका : (देख कर) यह तो पहले भी देखा हुआ-सा लगता है। तुम्हें यह कहाँ मिला ?

शर्विलक : तुम्हें इससे क्या मदनिका ! तुम तो ले जाओ !

मदनिका : (**क्रोध से**) यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास ही नहीं है तो मुझे मुक्त ही क्यों कराते हो ?

शर्विलक : प्रिये ! प्रातःकाल श्रेष्ठि चत्वर में मैंने सुना कि यह आर्य्य चारुदत्त का है ।

[**वसंतसेना और मदनिका को मूर्च्छा-सी आती है ।**]

शर्विलक : मदनिके ! धैर्य धारण करो ! मैं तुम्हें दासीत्व से मुक्त कराने आया हूँ । और भय से तुम्हारी आँखें चंचल हो रही हैं ? किस शोक से तुम्हारे अंग ऐसे व्याकुल हो गये हैं ! मुझ पर दया करना तो दूर रहा, उल्टे तुम डर रही हो ?

मदनिका : (**धैर्य्य धर कर**) अरे साहसी ! मेरे कारण ऐसा अधर्म करते समय तुमने उस घर में किसी को घायल तो नहीं किया ? किसी को मारा तो नहीं ?

शर्विलक : मदनिके ! शर्विलक कभी सोये हुए या डरे हुए पर प्रहार नहीं करता । न मैंने किसी को मारा, न किसी को घायल ही किया ।

मदनिका : सच ?

शर्विलक : बिल्कुल !

वसंतसेना : (**चेतन हो कर**) ओह ! मैं तो मर गई थी । फिर जी उठी ?

मदनिका : यह अच्छा हुआ ।

शर्विलक : (**ईर्ष्या से**) क्या अच्छा हुआ मदनिके ! मैं उच्च विचार वाले अच्छे कुल में जन्म ले कर भी केवल तुम्हारे कारण इस प्रेम-पाश में फँस कर नीच कर्म करता हूँ । कामदेव ने मेरे गुणों को नष्ट कर दिया है, किंतु मैं फिर भी मान को बचाये रहता

हूँ। मेरे सामने मुझे प्रिय कह कर किसी और की ही चाहना करती हो ? (उदासी से) इस लोक में अच्छा कुल एक महावृक्ष है जो धनरूप फल देता है, किन्तु वेश्यारूपी पक्षियों के खा लेने के कारण यह वृक्ष भी निष्फल हो जाता है। प्रेम जिसका ईंधन है, संभोग जिसकी ज्वाला है वह काम की ही अग्नि है जिसमें पुरुष अपना धन-यौवन सब ही होम देते हैं।

वसंतसेना : (**आश्चर्य्य से**) अरे ! यह बेमतलब का आवेश क्यों ?

शर्विलक : निश्चय ही वे मूर्ख हैं जो स्त्री और संपत्ति पर विश्वास रखते हैं ! यह दोनों ही साँपिन की तरह चलती हैं। स्त्रियों पर तो अनुराग नहीं ही करना चाहिये क्योंकि वे प्रिय चाहने वाले पुरुष का अनादर करती हैं। जो अपने पर अनुरक्ता हो उस स्त्री से तो रमण करे, किन्तु जो विरक्ता है उसे बिल्कुल ही छोड़ देना चाहिये। ठीक ही कहा है कि ये स्त्रियाँ धन पाने के लिये ही हँसती-रोती हैं, पुरुषों को विश्वास दिलाती हैं, किंतु स्वयं उन पर विश्वास करतीं नहीं। उच्च कुल और अच्छे स्वभाव के पुरुष को तो वेश्याओं को मरघट के फूल की तरह छोड़ देना चाहिये। समुद्र की लहर की भाँति चंचल स्वभाव और संध्या के मेघों की-सी अस्थाई प्रीति वाली वेश्याएँ तो धन उड़ाना चाहती हैं। महावर की तरह रस खींच कर वे मनुष्य को गरीब बना कर छोड़ देती हैं। स्त्री का नाम ही चपला है। और किसी को तो हृदय से चाहती है, और आँखों के इशारे से किसी और को ही बुलाती है। अपने यौवन का उद्वेग तो किसी और को दिखाती है, और शरीर से किसी और ही से भोग करती है। सच ही कहते हैं कि पर्वत के शिखर पर नलिनी पैदा नहीं होती, घोड़ों की गाड़ी

को गधे नहीं खींचते, न जौ बोने पर धान पैदा होता है, इसी तरह वेश्या के घर में जन्म लेने वाली स्त्री कभी पवित्र नहीं हो सकती ! अरे ! नीच चारुदत्त ! अब यह मुझसे स्नेह नहीं करती ! (**कुछ कदम चला जाता है ।**)

मदनिका : (**उसका उत्तरीय पकड़ कर**) निरर्थक बातें करते हुए तुम असंभव बात पर इतना क्रोध कर रहे हो ?

शर्विलक : असंभव ? कैसे ?

मदनिका : यह अलंकार आर्य्या वसंतसेना का है !

शर्विलक : तो ?

मदनिका : उन्होंने इसे आर्य्य चारुदत्त के पास धरोहर के रूप में रखा था ।

शर्विलक : क्यों ?

मदनिका : (**कान में कह कर**) समझे ?

शर्विलक : (**दुख और लज्जा से उदास हो कर**) कैसा कष्ट है ? ग्रीष्म से व्याकुल हो कर मैं जिस शाखा के नीचे छाया के लिये आया अनजाने में मैंने उसी के पत्तों को काट गिराया !

वसंतसेना : ये क्यों दुखी होता है ! इसने कोई जान-बूझ कर ऐसा थोड़े ही किया है ?

शर्विलक : मदनिके ! तो अब क्या करना उचित है ?

मदनिका : अरे तुम तो मुझसे अधिक चतुर हो !

शर्विलक : ऐसा नहीं । देखो ऐसी बातों में स्वभाव से ही स्त्रियाँ चतुर होती हैं । पुरुषों की चतुरता तो शास्त्र के उपदेश से प्राप्त होती है ।

मदनिका : शर्विलक ! अगर मेरी बात मानते हो तो यह आभूषण ले जा कर आर्य्या चारुदत्त को ही दे आओ !

शर्विलक : यदि वे राजकुल में जा कर कह दें मदनिके ! तो ?

मदनिका : चंद्रमा से कभी धूप निकलती है ?

वसंतसेना : धन्य ! मदनिके ! धन्य !

शर्विलक : मदनिके ! इस साहस से न तो मुझे दुख है, न अब भय ही है। तुम मुझे आर्य्य चारुदत्त के गुण क्या बताती हो ? मुझे तो चोरी जैसे घृणित कार्य्य की लज्जा है ! वर्ना हम जैसे धूर्तों का राजा कर ही क्या सकता है ? फिर भी यह बात नीति के विरुद्ध है। कोई और तरकीब सोचो !

मदनिका : अच्छा दूसरा तरीका यह है।

वसंतसेना : दूसरा उपाय ही क्या हो सकता है ?

मदनिका : तुम उसी आर्य्य चारुदत्त के कुटुम्ब के आदमी बन जाओ और इस आभूषण को आर्य्या के पास ले जाओ !

शर्विलक : ऐसा करने से क्या होगा ?

मदनिका : न तुम चोर समझे जाओगे, न चारुदत्त पर ऋण ही रहेगा और आर्य्या को अपना आभूषण वापिस मिल जायेगा।

शर्विलक : यह तो अतिसाहस का कार्य्य है !

मदनिका : अलंकार ले चलो। ऐसा न करना ही अति साहस है।

वसंतसेना : धन्य ! मदनिके ! तू धन्य है ! तूने तो ऐसी राय दी जैसे तू मुक्त ही हो गई।

शर्विलक : तुम्हारे पीछे चल कर मैंने महनी बुद्धि प्राप्त कर ली। चंद्रमा के डूब जाने पर रात में मार्ग-भूले पथिक को रास्ता बताने के लिए मुश्किल से ही कोई मिलता है।

मदनिका : इस कामदेव के घर में तुम क्षण भर ठहरो। तब तक मैं आर्य्य वसंतसेना को तुम्हारे आने की सूचना देती हूँ।

शर्विलक : अच्छी बात है।

मदनिका : (**जा कर**) आर्य्ये ! आर्य्य चारुदत्त के पास से एक ब्राह्मण आया है !

वसंतसेना : तू कैसे जानती है री कि यह उनका ही आदमी है !

मदनिका : आर्य्ये ! क्या अपने संबंधियों को भी नहीं पहचानूँगी ?

वसंतसेना : (**सिर हिला कर हँसते हुए स्वगत**) ठीक बात है। (**प्रगट**) जा उन्हें ले आ।

मदनिका : जैसी आपकी आज्ञा। (**जा कर**) शर्विलक, भीतर चलो !

शर्विलक : (**प्रवेश करके उदास-सा**) आपका कल्याण हो !

वसंतसेना : आर्य्य प्रणाम करती हूँ। विराजिये आर्य्य !

शर्विलक : सार्थवाह चारुदत्त ने कहा है कि घर जीर्ण-शीर्ण होने के कारण इस सोने के आभूषण की रक्षा करना बहुत कठिन हो गया है अतः इसे आप ही ले लें।

[**मदनिका को दे कर चल पड़ता है।**]

वसंतसेना : आर्य्य ! मेरा भी सँदेसा लेते जायें।

शर्विलक : (**स्वगत**) वहाँ कौन जायेगा ? (**प्रगट**) कहिये।

वसंतसेना : पत्नी-भाव से मदनिका को ग्रहण करें।

शर्विलक : आर्य्ये ! मैं समझा नहीं।

वसंतसेना : मैं समझ रही हूँ।

शर्विलक : कैसे ?

वसंतसेना : आर्य्य चारुदत्त ने मुझसे कहा है कि जो कोई इस आभूषण को ला कर दे, उसे मदनिका को समर्पित कर देना। इसी लिये मदनिका को आपके हाथों सौंप रही हूँ। आप यही समझें।

शर्विलक : (**स्वगत**) अरे ! क्या यह सब बात समझ गई ? (**प्रकाश**)

धन्य ! आर्य्य चारुदत्त ! आप धन्य हैं ! मनुष्यों को सदैव गुण प्राप्त करने के लिये ही प्रयत्न करना चाहिये। गुणी दरिद्र भी निर्गुण धनिकों के समान नहीं, उनसे कहीं बढ़ कर होता है। मनुष्यों को चाहिये कि वे दया आदि गुणों को प्राप्त करें, क्यों कि गुणी व्यक्ति को कुछ भी अप्राप्य नहीं है। शीतल होने ही से चंद्रमा शिव के मस्तक पर पहुँच गया है। वहाँ क्या और कोई पहुँच सकता है ?

वसंतसेना : यहाँ कौन गाड़ीवान है ?

चेटी : (**गाड़ी के साथ प्रवेश कर**) आर्य्ये ! गाड़ी तैयार है।

वसंतसेना : अरी मदनिके ! तुझे आँख भर कर देख लूँ, क्यों कि अब तू किसी और की हो गई। गाड़ी पर चढ़। मुझे याद रखेगी न ?

मदनिका : (**रोती हुई**) आर्य्या ने मुझे निकाल दिया।

[**चरणों पर गिरती है।**]

वसंतसेना : अब तो तुम पूजनीय हो गई हो। अब जाओ। गाड़ी पर चढ़ो। मुझे याद रखना।

शर्विलक : तुम्हारा कल्याण हो ! मदनिके ! वसंतसेना को खूब देख लो, और उन्हें सिर झुका कर प्रणाम करो। इन्हीं के कारण तुमने, यहाँ तो दुर्लभ ही रहने वाले, वधू शब्द का घूंघट पा लिया है।

[**मदनिका के साथ गाड़ी पर चढ़ कर जाने को तैयार होता है।**]

नेपथ्य में : अरे कौन है यहाँ ? कौन है ? राजपुरुष यह सूचना देते हैं कि किसी सिद्ध पुरुष ने कहा है कि गोप-पुत्र आर्यक राजा हो जायेगा। इस वाक्य पर विश्वास करके राजा पालक ने डर कर उस गोप-पुत्र को घर से पकड़ कर कठोर बंदीगृह

में डाल दिया है। अपने-अपने स्थान पर सभी प्रहरी सावधान हो जायें।

शर्विलक : (सुन कर) क्या राजा पालक ने मेरे प्रिय मित्र आर्यक को पकड़ लिया है ? और इधर मेरे गिरस्ती बँध गई है। बड़ी मुसीबत है। संसार में मनुष्यों को स्त्री और मित्र दोनों बड़े प्रिय हैं। पर इस समय मित्र बदी है, तो वह सैकड़ों स्त्रियों से भी ऊँचा है। अब मैं उतरता हूँ।

[गाड़ी से उतर जाता है।]

मदनिका : (आँसू-भरी आँखों से देखती हुई हाथ जोड़ कर) आपका विचार ठीक है, पर पहले मुझे अपने घर के बड़ों के पास पहुँचा दीजिये !

शर्विलक : धन्य प्रिये ! धन्य ! तुमने मेरे मन की बात कही। (चेट से) भद्र ! तुम रेभिल सार्थवाह का घर जानते हो ?

चेट : हाँ, जानता हूँ।

शर्विलक : तो मेरी प्रिया को वहीं ले जाओ।

चेट : जैसी आर्य्य की आज्ञा।

मदनिका : जैसा आर्य्य का विचार है, वैसे ही सदा सावधान रहें।

[प्रस्थान]

शर्विलक : जिस तरह यौगंधरायण ने राजा उदयन की रक्षा के लिये प्रयत्न किया था, वैसे ही मैं भी मित्र आर्यक के उद्धार के लिये राजा के परिवार, धूर्त्त, प्रसिद्ध वीर तथा राजा के अपमान से क्रुद्ध लोगों, मंत्री और अन्य राज कर्मचारियों को भड़काऊँगा। नीच शत्रुओं ने अपने नुकसान की आशंका से बिना कारण ही मेरे प्रिय मित्र आर्यक को बंदीगृह में डाल

दिया है। राहु के मुख में पड़े चंद्रमा के समान आर्यक का मैं शीघ्र ही उद्धार करूँगा।

[प्रस्थान]

चेटी : (प्रवेश कर) आर्य्ये ! शुभ संवाद है। आर्य्य चारुदत्त के यहाँ से ब्राह्मण आया है।

वसंतसेना : कितना सुंदर दिन है ! चेटी ! बंधुल[1] के साथ उन्हें ससम्मान भीतर ले आओ।

चेटी : जैसी आर्य्या की आज्ञा।

[प्रस्थान]

[विदूषक का बंधुल के साथ प्रवेश]

विदूषक : ही-ही-ही ! राक्षसों का राजा रावण तो घोर तपस्या करके पुष्पक विमान प्राप्त करके उस पर जाता था, पर मैं ब्राह्मण बिना तपस्या के ही, बिना कष्ट के ही पुरुष और नारी-रूपी विमानों पर जाता हूँ।

चेटी : आर्य्य ! देखिये ! हमारे घर का द्वार देखिये !

विदूषक : (आश्चर्य्य से देख कर) अरे ! वसंतसेना का गृहद्वार ! कैसा सुन्दर है ! पानी छिड़क कर, बुहार कर गोबर से साफ लिपा हुआ, अनेक सुन्दर फूलों से सजा हुआ, चित्रित-सा लग रहा है। आकाश की शोभा देखने को इसने कितना ऊँचा सिर उठा दिया है। ऐरावत की सूण्ड की भाँति डोलती हुई मल्लिका-पुष्पों की मालाएँ लटक रही हैं। कितने उठे हुए गजदंत के तोरण से यह सजा हुआ है ! चंद्रकांत आदि महारत्नों से जड़ा हुआ है ! वायु के वेग से हिलती हुई शोभ प्रतीकिनी पताकाएँ ऐसे फरफरा रही हैं जैसे कोई हाथ हिला-हिला कर मुझे बुला

१. बंधुल—सेवक : मुफ्त पलने वाले।

रहा है। तोरण बाँधने के लिये जो दोनों ओर स्तम्भ-वेदिका है, उस पर लहलहाते हरे-हरे आम के पत्तों से सजे सुंदर स्फटिक के बने मंगलदायी कलश धरे हैं। सुवर्ण के किवाड़ हीरों की कीलों से जड़े हुए ऐसे लगते हैं जैसे प्रचण्ड असुर का कठोर वक्षस्थल हो। अपूर्व है! अपूर्व है! इसे देखने को तो निस्पृहों की दृष्टि भी हठात् आकर्षित होती है।

चेटी : आइये! आर्य्य! इस प्रथम कक्ष में प्रवेश करिये।

विदूषक : (**प्रवेश करके देख कर**) ही-ही-ही! हो-हो! प्रथम प्रकोष्ठ में भी चंद्रमा और मृणाल की कांति की भाँति मनोरम, सब जगह मुट्ठी भर चूर्ण एक-सा छींटने से शुभ्र वर्ण, अनेक रत्नों से गूँथी हुई स्वर्णमयी सीढ़ियों से सुशोभित, अट्टालिका की मंजिलें, झूमती मोतियों की मालाओं और स्फटिक से बने झरोखों-रूपी मुखचंद्र से मानों उज्जयिनी को देख रही हैं! वेदज्ञ ब्राह्मण की भाँति सुख से बैठा द्वारपाल ऊँघ रहा है। दही के साथ कलम धान के भात को देने पर भी कौए नहीं खाते क्योंकि वे तो स्फटिक से चमत्कृत हो गये हैं! ऐसी शुभ्र बलि भी वे नहीं चाहते! चलिये आगे का रास्ता दिखाइये।

चेटी : आर्य्य, इधर आयें! आइये दूसरे प्रकोष्ठ में प्रवेश करिये!

विदूषक : (**प्रवेश करके देख कर**) धन्य-धन्य! मुख में रखी घास खाने से पुष्ट, तेल से चिपुड़े सींग वाले गाड़ी के बैल बँधे हैं यहाँ! यह दो भैंसे जो हैं, इनमें से एक तो अपमानित कुलीन की तरह लंबी-लबी साँसें ले रही है। इस तरफ युद्ध से विरत योद्धा के-से इस भेड़े की गर्दन मली जा रही है! इधर घोड़ों के बालों को बाँधा जा रहा है। चोर की तरह घुड़साल में

यह बंदर कस कर बाँधा गया है ! (दूसरी ओर देख कर) इधर तो तेल से चुचाते अन्न पिण्डों को महावत लोग हाथी को खिला रहे हैं ! चलिये, आगे चलें ।

चेटी : आइये आर्य्य ! अब आप तीसरे प्रकोष्ठ में प्रवेश करें ।

विदूषक : (प्रवेश करके देख कर) वाह ! कैसे-कैसे सुंदर आसन हैं, जो अच्छे कुलोत्पन्न व्यक्तियों के बैठने योग्य हैं ! आधी पढ़ी हुई पुस्तक पाँसे खेलने के कोष्टक पर रखी है। और पाँसा खेलने का कोष्टक भी मणिमयी गोटी वाला है । नायक-नायिका में प्रेम-विलाप और प्रणय-कलह कराने में चतुर वेश्याएँ कैसी रंग-विरंगी चित्रावली हाथों में लिये इधर-उधर घूम रही हैं । वृद्ध विट भी घूम-फिर रहे हैं ! आगे का मार्ग दिखाइये ।

चेटी : आइये आर्य्य ! इधर ! चौथे प्रकोष्ठ में आइये ।

विदूषक : (प्रवेश करके देख कर) वाह ! वाह ! यहाँ तो युवतियों से बजाये हुए मृदंगों में से मेघों का-सा गंभीर शब्द गूँज रहा है । करताल ऐसे गिरते हैं जैसे पुण्य क्षीण होने पर आकाश से नक्षत्र गिर रहे हों ! बाँसुरी की तान है कि भ्रमरों का मनोहर गुँजन ! ईर्ष्या के कारण प्रणय में कुपित हो गई रमणी की भाँति वीणा को गोदी में रख कर नख-क्षत से उसे रिझाया जा रहा है ! मकरंद पी कर मस्त हुई भ्रमरियों की भाँति यह वेश्या-बालिकाएँ नचाई जा रही हैं । उन्हें अभिनय योग्य रस-पूर्ण पुस्तकें पढ़ाई जा रही हैं । जल से भरी मथनिया झरोखों पर धरी हवा के झोकों से ठंडी हो रही है। आइये, आगे चलें !

चेटी : आर्य्य ! इस ओर ! यह लीजिये, पाँचवाँ प्रकोष्ठ है ।

विदूषक : (प्रवेश करके देख कर) गरीबों को लुब्ध करने वाली

हिङ्गु तैल की सुगंधि कैसी आकर्षित कर रही है ? सदा जलाया जाने वाला पाकस्थान (रसोई) अपने द्वाररूपी मुख से तरह-तरह के सुगंधित धूम निकालता मानों निश्वास ले रहा है। तरह-तरह के पकवानों की गंध मुझे आकर्षित कर रही है। इधर यह सुंदर बालक जीर्ण वस्त्र की भाँति मांस को धो रहा है। रसोइया तरह-तरह के खाद्यान्न बना रहा है। लड्डू बाँधे जा रहे हैं, मालपुए पक रहे हैं। (**स्वगत**) इतना खाना खाने के लिए मुझे पैर धोने को पानी कहाँ मिलेगा ? (**अन्यत्र देख कर**) अरे ! यहाँ गंधर्वों की भाँति अनेक आभूषण पहने बंधुल और सुंदरी वेश्याओं से यह घर तो स्वर्ग जैसा लग रहा है। यह बंधुल !! तुम लोग कौन हो ?

बंधुलगण : हम लोग पराये घर में पलते हैं, दूसरे के अन्न से चक्क रहते हैं, परस्त्री और परपुरुष के संयोग से जन्म लेते हैं। दूसरे के धन पर आश्रित रहते हैं। हममें कोई गुण नहीं है। हम बंधुल तो हाथी के बच्चे की भाँति मस्त स्वच्छन्द मौज करते हैं।

विदूषक : चलिये, आगे का रास्ता बताइये।

चेटी : चलिये आर्य्य ! छठे प्रकोष्ठ में आयें।

विदूषक : (**प्रवेश करके देख कर**) साधु ! साधु ! यहाँ तो पन्ना आदि मणियों से गूँथे सोने और रत्नों से बनाये ये तोरण हैं कि साक्षात इंद्रधनुष है ? वैदूर्य्य, मोती, मूँगा, पुष्पराग, इंद्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, और मरकत आदि रत्नों पर शिल्पीगण बैठे हुए विचार कर रहे हैं ! सुवर्ण से मणियाँ बाँधी जा रही हैं, लाल डोरे में सोने के आभूषण गूँथे जा रहे हैं। मोती के अलंकार गूँथे जा रहे हैं, वैदूर्य्य मणियाँ धीरे-धीरे घिसी जा

रही हैं, शंख चिकने किये जा रहे हैं, मूँगे सान पर चढ़ाये जा रहे हैं, गीले कुंकुम के पत्थर सुखाये जा रहे हैं, कस्तूरी इकट्ठी की जा रही है, और चंदन-रस बड़ी लगन से घिसा जा रहा है, कोई सुगंधित लेप लगा रहा है, वेश्या और कामुक प्रेमी को कपूर डला पान खाने को दिया जा रहा है। कहीं कटाक्ष हो रहा है, तो कहीं हास्य। सी-सी करते हुए लोग निरंतर मदिरा पी रहे हैं। ये चेट हैं! ये चेटी हैं! और ये वे हैं जो अपनी स्त्री, पुत्र और धन का तिरस्कार करके आये हैं, और वेश्याओं ने जिस बर्फ से ठंडे मद्य को पी कर बचा दिया है, उसे पी रहे हैं। आगे चलिये।

चेटी : आर्य्य ! यह मार्ग है। लीजिये सातवाँ प्रकोष्ठ आ गया।

विदूषक : (**प्रवेश करके देख कर**) ओहो ! क्या कहने हैं ! कितना सुंदर पक्षी-गृह है ! कबूतर के जोड़े सुख से पड़े हुए आपस में चुंबन लेने का सुख प्राप्त कर रहे हैं। दही-भात खा कर प्रसन्न हुए ब्राह्मण की तरह पिंजड़े में बंद तोता कैसे सुंदर-सुंदर वाक्य बोल रहा है। स्वामी का अधिक आदर पाने वाली गृह-सेविका की-सी मैना अधिक कुर-कुर कर रही है। मीठे फलों को खाने से कोयल मिठबोली कुटनी-सी बोल रही है। खूँटियों पर पिंजड़ों की कतारें लटक रही हैं। लावक पक्षी लड़ रहे हैं। पिंजड़े में से तीतर बोल रहा है। पिंजड़ों में पाले हुए कबूतर इधर-उधर भेजे जा रहे हैं। तरह-तरह की मणियों से सजाये हुए-से यह पालतू मोर नाचते हुए धूप से जलती अट्टालिका को शांत करने को अपने परों से हवा कर रहे हैं। (**अन्यत्र देख कर**) चंद्रमा की इकट्ठी हो गई किरणों के-से ये उज्ज्वल राजहंसों के जोड़े कामिनियों के

पीछे इसलिये चल रहे हैं मानो उनकी गति सीख रहे हैं। और वृद्ध श्रेष्ठों की तरह ये पालतू सारस इधर घूम रहे हैं! वाह! गणिका वसंतसेना ने तरह-तरह के पक्षियों से इस कक्ष को भर कर साक्षात् नंदन वन बना दिया है। चलिये, आगे चलें!

चेटी : यहाँ आर्य्य! आठवाँ प्रकोष्ठ आ गया।

विदूषक : (प्रवेश करके देख कर) मान्ये! यह कौन है जो रेशमी वस्त्र पहने एक-से अलंकार पहने अंग-भंग से लड़खड़ाता चल रहा है?

चेटी : यह वसंतसेना का भाई है आर्य्य!

विदूषक : कितना तप करने से यह वसंतसेना का भाई हुआ है! लेकिन नहीं। गोरा है, स्निग्ध है, सुगंधित है, पर श्मशान में उत्पन्न चम्पक वृक्ष की भाँति यह भी संसार के लिये अस्पृश्य है। (अन्यत्र देख कर) और वह कौन है जो चमकते वस्त्र पहने है और तेल से सिक्त जूतों में चरण दिये रखने के कारण इतने साफ पैर लिये ऊँचे आसन पर बैठी है?

चेटी : आर्य्य! यह वसंतसेना की माता हैं।

विदूषक : अरे! इस अपवित्र पिशाचिनी का पेट कितना बड़ा है? क्या इसे घुसा कर ही इस शिव के समान सुन्दर घर को बनवाया गया है?

चेटी : हाय! हमारी माता का ऐसा उपहास न करें। यह चातुर्थिक* से पीड़ित हैं।

विदूषक : (परिहास के साथ) भगवन्! चातुर्थिक! इसी उपचार से मुझ ब्राह्मण की ओर भी आँख फेरिये!

चेटी : मर कर ही उठोगे! समझ लो।

---

*चौदिया रोग—पेट फूलना : जलन्दर।

विदूषक : (**सपरिहास**) दासी की बेटी ! ऐसे गोरे और बड़े पेट वाले का तो मर जाना ही अच्छा है ! सीधु, सुरा और आसव—ऐसी मदिराएँ पी कर मतवाली माता ऐसी स्थूल हो गई है। यह मर जाये तो हजारों सियारों को खाना मिल जाये ! क्यों ? क्या आप लोग गाड़ियाँ चलाती हैं ?

चेटी : नहीं तो आर्य्य !

विदूषक : गाड़ी के बारे में क्या पूछना ! कामरूपी सागर के प्रेम-निर्मल जल में आप लोगों के कुच, नितंब और जंघा ही मनोहर गाड़ियाँ हैं। तरह-तरह के मानव, पशु-पक्षीयुक्त वसंतसेना के आठों प्रकोष्ठ देख कर मुझे सचमुच विश्वास हो गया है कि मैंने एक ही जगह स्वर्ग, मर्त्य और पाताल-लोक देख लिया है। मेरे पास इसकी प्रशंसा करने योग्य शब्द कहाँ ? यह क्या गणिका का घर है ? या कुबेर का भवन उतर आया है ? और आर्य्या वसंतसेना कहाँ हैं ?

चेटी : आर्य्य ! वे तो उद्यान में बैठी हैं। आप वहीं चलें। आइये। लीजिये। यह उद्यान है।

विदूषक: (**प्रवेश कर और देख कर**) अहा ! कैसी छटा है। सुन्दर कलियाँ हैं। अनेक वृक्ष हैं। युवतियों की जांघ तक ऊँचे रस्सी के झूले घने वृक्षों के नीचे बनाये गये हैं। सुवर्णयूथिका, शेफालिका, मालती, मल्लिका, नवमल्लिका, कुरवक, माधवीलता आदि फूलों की छटा तो नंदन वन को भी हरा रही है। (**अन्यत्र देख कर**) उदय होते हुए सूर्य्य की कांति वाले लाल कमलों से तालाब पर मानों संध्या उतर आई है। युद्धभूमि में सघन लहू की कीचड़ से सने योद्धा की तरह यह अशोक वृक्ष नयी

कोपलों से कैसा सुन्दर लग रहा है। अच्छा ! हाँ ! आर्य्या वसंतसेना कहाँ हैं ?

चेटी : आर्य्य ! नीचे करें तनिक दृष्टि ! वह आर्य्या हैं, देखिये।

विदूषक : (**देख कर और पास जा कर**) आपका मंगल हो !

वसंतसेना : अरे मैत्रेय ! (**उठ कर**) स्वागत है। यह आसन है, विराजें।

विदूषक : आप बैठिये। (**दोनों बैठते हैं।**)

वसंतसेना : सार्थवाह-पुत्र सकुशल हैं न ?

विदूषक : सकुशल हैं।

वसंतसेना : आर्य्य मैत्रेय ! उदारता ही जिसके पल्लव हैं, विनम्रता ही शाखा हैं, विश्वास ही मूल है, गौरव पुष्प हैं, परोपकार से जो फलवान हो रहा है उस साधु वृक्ष[1] पर मित्ररूपी पक्षी अब भी सुख से रहते हैं ?

विदूषक : (**स्वगत**) कुटिल विलासिनी ने कैसे पते की पूछी है ! (**प्रकाश**) हाँ।

वसंतसेना : अच्छा, आज कैसे कष्ट किया ?

विदूषक : सुनिये ! आर्य्य चारुदत्त शीश पर अंजलि बाँध कर आपसे निवेदन करते हैं...

वसंतसेना : (**हाथ जोड़ कर**) क्या आज्ञा देते हैं ?

विदूषक : 'अपना समझ कर उस सोने के गहने को मैं जुए में हार गया और जूए का सभाध्यक्ष वह राजदूत न मालूम कहाँ चला गया।'

चेटी : आर्य्ये ! विचित्र बात है। आर्य्य जूआ खेलने लगे हैं ?

---

१. अर्थात् चारुदत्त।

वसंतसेना : (स्वगत) चोरों से चुराये आभूषण को भी वे उदारता के कारण जूए में हारा हुआ बताते हैं ! इसी लिये तो मैं उन्हें चाहती हूँ !

विदूषक : उसके बदले में आप यह रत्नावली स्वीकार करें ।

वसंतसेना : (स्वगत) क्या वह गहना दिखा दूँ ? (सोच कर) नहीं, अभी नहीं ।

विदूषक : आप क्या इसे पसंद नहीं करतीं ?

वसंतसेना : (हँस कर सखी का मुख देख कर) मैत्रेय ! रत्नावली क्यों नहीं लूँगी ? (ले कर बगल में रख कर स्वगत) क्या मंजरियों से हीन आम के वृक्ष से भी मकरंद की बूंदें चूती हैं ? (प्रगट) मेरी ओर से उन जूआ खेलने वालों से कहना कि मैं सूर्य्यास्त के बाद उनसे मिलने आऊँगी ।

विदूषक : (स्वगत) और क्या होगा ? उनके पास जा कर कुछ और लेगी । (प्रगट) कह दूँगा । (स्वगत) कहूँगा आप गणिका-संपर्क छोड़ दें ।

[प्रस्थान]

वसंतसेना : चेटी ! इस रत्नावली को रख ले । चारुदत्त से मिलने चलें ।

चेटी : आर्य्ये ! असमय में, देखिये तो, कैसी काली घटाएँ उठ रही हैं ।

वसंतसेना : मेघ घिर आयें, रात हो जाये, निरंतर पानी बरसता रहे, फिर भी प्रियतम से मिलने की इच्छा के कारण मुझे वह सब कुछ भी नहीं लगता । उस हार को ले कर शीघ्र आ !

[प्रस्थान]

[मदनिका-शर्विलक नामक चौथा अङ्क समाप्त]

पाँचवाँ अङ्क

[आसन पर बैठे हुए उत्कण्ठित चारुदत्त का प्रवेश।]

चारुदत्त : (ऊपर की ओर देख कर) असमय में काली घटाएँ उठ रही हैं। मेघों से भरे आकाश की ओर देख कर पंख फैलाये गृहमयूर आदरपूर्वक देखे जाते हैं और मानसरोवर जाने के लिये उत्सुक और उन्मन हंसों से उपेक्षा हो जाती है; असमय में उठने पर वही मेघ उत्कण्ठा से भरे मनुष्य और आकाश दोनों को अवरुद्ध किये दे रहा है। जल से भींगे भैंसे के पेट-सा, या भ्रमर-सा काला मेघ बिजलीरूपी पीताम्बर पहने, बगुलों की पंक्तिरूपी शंख लिये, वामनावतार विष्णु की तरह आकाश में व्याप्त हो जाने को तैयार हो गया है। टपकते चाँदी के द्रव की भाँति मेघ-गर्भ से जलधारा बड़े वेग से गिर रही है। दीपशिखा-सी बिजली में कभी तो दीखती है कभी अदृश्य हो जाती है। जलधाराएँ क्या हैं, आकाशरूपी फटे वस्त्र से सूत

गिर रहे हैं। कैसा सुन्दर मेघ है। जैसे चित्रलिखित-सा हो! कभी चकवे का जोड़ा बनता है, कभी उड़ते हँस-सा, कभी समुद्र-मंथन के वेग से बाहर फेंके गये बड़े-बड़े मत्स्यों-सा दिखाई देता है। कभी मकर बनता है। कभी ऊँचे भवन-सा लगने लगता है। वायु इसे कितने रूप देती है! दुर्योधन के असंयत राज्य की भाँति बादल का अंधकार आकाश में छा गया है। दुर्योधन की भाँति मयूर अत्यंत अहंकार से भरा हुआ प्रसन्न हो कर कूक रहा है। जूए में हारे हुए युधिष्ठिर की तरह कोयलें वन की ओर चली गई हैं। पाण्डवों की भाँति हंस अब वन से अज्ञातवास की ओर चल पड़े हैं। (**सोच कर**) वसंतसेना के पास गये मैत्रेय को बहुत देर हो गई, अभी तक नहीं लौटा?

विदूषक : (**प्रवेश कर**) धन्य रे गणिका के लोभ कि आभूषण के अतिरिक्त और किसी बात करने का दाक्षिण्य भी नहीं दिखाया! ऐसी उपेक्षा से बिना कुछ कहे ही उसने रत्नावली ले ली! इतना धन पास होते हुए भी उसने मुझसे यह तक नहीं कहा कि—आर्य्य मैत्रेय! थोड़ा विश्राम कर लो, पानी-वानी पी कर जाओ! कुछ तो कहा होता! अरे इन अधम गणिकाओं का तो मुख भी नहीं देखना चाहिये। (**दुख सहित**) ठीक कहा है कि मूल बिना कमलिनी, धूर्त्तता के बिना बनिया, चोरी बिना सुनार, कलह बिना गँवार पंचायत नहीं मिलती और न ही मिलती लोभ बिना गणिका। प्रिय मित्र से कहूँगा कि गणिका के संसर्ग से तो अलग ही रहो। (**घूम कर और देख कर**) अरे मित्र उद्यान में बैठे हैं? चलूँ उनके पास। (**पास जा कर**) आपका कल्याण हो! समृद्ध हों!

चारुदत्त : (देख कर) अरे मित्र मैत्रेय आ गये ! स्वागत सखे ! आओ बैठो !

विदूषक : जी बैठा हूँ ।

चारुदत्त : मित्र ! क्या हुआ उस बारे में ।

विदूषक : कार्य तो बिगड़ गया ।

चारुदत्त : क्या उसने रत्नावली नहीं ली ?

विदूषक : हमारा ऐसा भाग्य कहाँ ? उसने तो कमलकली-सी कोमल हथेलियाँ माथे पर मिला कर झट से ले ली ।

चारुदत्त : तब फिर काम कैसे बिगड़ गया ?

विदूषक : क्यों ? बिगड़ा कैसे नहीं ? जिससे कुछ काम नहीं लिया, लाभ नहीं उठाया, जरा-से मूल्य वाले चोरी चले गये आभूषण के बदले चारों समुद्रों की सार वस्तु उस रत्नावली को ही खो दिया !

चारुदत्त : नहीं मित्र ! यह बात नहीं है । रत्नावली तो उस विश्वास के लिये दी गई है जिससे उसने हमारे यहाँ अपना आभूषण धरोहर के रूप में रखा था ।

विदूषक : मित्र ! मुझे तो इसका अधिक शोक है कि उसने आँचल से मुँह ढँककर सखी को संकेत करके हमारा उपहास किया । इसलिये मैं ब्राह्मण हो कर भी इस समय आपके चरणों पर अपना मस्तक रख कर आपसे निवेदन करता हूँ कि इस मुसीबत—इस गणिका के स्नेह से आप विमुख हों । गणिका तो जूते में पड़ी कंकड़ी की तरह होती है जो बड़ी मुश्किल से निकाली जाती है । वयस्य ! जहाँ गणिका, हाथी, कायस्थ, भिक्षु, शठ और गधे रहते हैं, वहाँ भले आदमियों की कौन कहे, दुष्ट लोग तक नहीं जाते ।

चारुदत्त : मित्र ! निंदा क्यों करते हो ? सब व्यर्थ की बात है। मैं दरिद्रता के कारण गणिकाओं से स्वयं विमुख हूँ। घोड़ा तो तेज़ भागना चाहता है, पर थक कर कमज़ोर हो जाने से उसके पाँव तो तेज़ नहीं पड़ते ? मनुष्य की मनोवृत्तियाँ तो चंचल होने के कारण सब जगह दौड़ती हैं, किन्तु कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो कर वे उसके हृदय में ही लीन हो जाती हैं ! जिसके पास धन है, उसी की स्त्री है। वह तो धन से ही वश में लाई जा सकती है। (**स्वगत**) नहीं, वह तो गुण के बस में भी हो सकती है ! (**प्रगट**) हम लोग तो गरीब हैं, अपने आप ही वह मुझसे छूटी हुई है।

विदूषक : (**नीचे देख कर स्वगत**) यह ऊपर देख कर लम्बी साँस लेता है, मुझे लगता है मेरे मना करने पर इसकी इच्छा और भी तीव्र हो गई है। ठीक ही कहा है कि काम वाम होता है। (**प्रगट**) मित्र ! उसने कहा है कि आज सूर्य्यास्त के बाद वह तुमसे मिलने आयेगी। लगता है वह रत्नावली से संतुष्ट नहीं हुई, अभी और कुछ माँगेगी।

चारुदत्त : आने दो मित्र, संतुष्ट हो कर ही लौटेगी।

चेट : (**प्रवेश कर**) शुनो मनुश्यो ! जैशे-जैशे मेघ झरता है, मेरी पीठ का चमड़ा भी भींगता जाता है। जैशे-जैशे ठंडी हवा लगती है वैशे-वैशे ही मेरा हृदय काँपता है। (**हँस कर**) शात छेदों वाली वंशी शे मधुर ध्वनि निकालता हूँ, शातों तारों से बजने वाली वीणा को बजाता हूँ। और गधे की तरह गाता हूँ, मेरे गाने के शामने तुम्बुरु[1] और नारद भी तुच्छ हैं। आर्य्या वशंतशेना ने मुझे आज्ञा दी है कि कुम्भीलक ! तुम जा कर

---

१. गंधर्व और देवर्षि—बड़े गायक।

आर्य्य चारुदत्त को मेरे आने की सूचना दो। आर्य्य चारुदत्त के घर चलूँ। (घूम कर किवाड़ की संधि से देख कर) यह आर्य्य चारुदत्त उद्यान में बैठे हैं, और शाथ में वह दुष्ट ब्राह्मण भी है। पाश चलूँ। उपवन का द्वार क्यों बन्द है? अच्छा। इस दुष्ट ब्राह्मण को इशारा करूँ।

[कंकड़ी फेंकता है।]

विदूषक : अरे! चहारदीवारी से घिरे रहने पर भी मेरे सिर पर कंकड़ी कौन फेंक रहा है?

चारुदत्त : उपवन के महल की कपोत-पालिका पर खेलते हुए कबूतरों ने गिराई होगी।

विदूषक : दासीपुत्र! दुष्ट! कबूतर! ठहर-ठहर! इस डंडे से पके हुए आम के फल की तरह तुझे इस अट्टालिका से भूमि पर गिराता हूँ। (काठ का डंडा उठा कर दौड़ता है।)

चारुदत्त : (जनेऊ पकड़ कर खींचता है।) बैठो मित्र! इस काम से लाभ क्या? दीन कपोत को उसकी प्रिया के साथ बैठने दो!

चेट : कबूतर को देखते हो, मुझे नहीं देखते! मैं दूशरी कंकड़ी मारता हूँ।

[मारता है।]

विदूषक : (सब तरफ देख कर) कौन? कुम्भीलक! अच्छा तो निकट जाऊँ। (आ कर दरवाजा खोल कर) अरे कुम्भीलक! आओ! तुम्हारा स्वागत है।

चेट : (प्रवेश कर) आर्य्य प्रणाम करता हूँ।

विदूषक : अरे! ऐसे दुर्दिन अंधकार में तुम कैसे आये?

चेट : अरे यह वह है!

विदूषक : कौन? वह कौन है? क्या है?

चेट : यह वह है ।

विदूषक : अरे दासीपुत्र ! अकालग्रस्त बुड्ढे कंजूस-से क्यों लम्बी साँसें ले रहे हो ?

चेट : अरे ! तुम भी इंद्रवलि के लोभी कौवे की तरह क्यों का-का (क्या) कर रहे हो ?

विदूषक : बात क्या है ?

चेट : (**स्वगत**) यों कहूँ । (**प्रगट**) अरे, मैं तुम्हें प्रश्न देता हूँ ।

विदूषक : मैं तुम्हारे सिर पर पाँव दूँगा ।

चेट : अच्छा तो शमझो ! बोलो, आम में बौर कब आती है ?

विदूषक : अरे दासीपुत्र ! गर्मी में ।

चेट : (**हँस कर**) नहीं-नहीं ।

विदूषक : (**स्वगत**) क्या जवाब दूँ ? (**सोच कर**) चारुदत्त से जा कर पूछूँ । (**प्रगट**) अरे जरा ठहरो । (**चारुदत्त के पास जा कर**) मित्र ! मैं पूछता हूँ कि आम में मंजरियाँ कब लगती हैं ?

चारुदत्त : मूर्ख ! वसंत में ।

विदूषक : (**चेट के पास जा कर**) मूर्ख ! वसंत में !

चेट : अच्छा दूशरा शवाल करता हूँ । बताओ ! शुशमृद्ध ग्रामों की रक्षा कौन करता है ?

विदूषक : अरे ! गली !

चेट : (**हँस कर**) नहीं-नहीं ।

विदूषक : मैं तो चक्कर में पड़ गया । (**सोच कर**) फिर चारुदत्त से पूछूँ । (**पास जा कर पूछता है ।**)

चारुदत्त : मित्र ! सेना !

विदूषक : (**चेट के पास जा कर**) अरे दासीपुत्र ! सेना !

चेट : अच्छा ! अब दोनों उत्तरों को मिला कर जल्दी से कहो ।

विदूषक : सेना-वसंत !

चेट : अरे इन्हें उलट कर कहो।

विदूषक : (शरीर उलट कर) सेनावसंत !

चेट : अरे मूर्ख ब्राह्मण ! पद-परिवर्त्तन करके कहो !

विदूषक : (पाँव बदल कर) सेनावसंत !

चेट : अरे मूढ़ ! अक्षर का पद-परिवर्त्तन करो !

विदूषक : (सोच कर) वसंत-सेना !

चेट : वही ! आई है !

विदूषक : आर्य्य चारुदत्त से कहता हूँ। (पास जा कर) आपके धनिक आये हैं।

चारुदत्त : हमारे कुल में धनिक कौन है ?

विदूषक : कुल में न सही, द्वार पर तो है ! वसंतसेना आई है।

चारुदत्त : मुझे बहकाते हो मित्र !

विदूषक : यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो इस कुम्भीलक से पूछो। अरे दासीपुत्र ! कुम्भीलक ! इधर आ !

चेट : (पास आ कर) आर्य्य ! वंदना करता हूँ।

चारुदत्त : भद्र ! स्वागत है। बताओ ! क्या सचमुच वसंतसेना आई है ?

चेट : हाँ वशंतशेना आई है।

चारुदत्त : (प्रसन्नता से) भद्र ! मैंने प्रिय वचन सुन कर कभी भी उसे खाली नहीं जाने दिया। इसलिये ये पारितोषिक ले। (उत्तरीय देता है।)

चेट : (ले कर, संतोष से प्रणाम करके) मैं आर्य्या वशंतशेना शे जा कर कहता हूँ। (प्रस्थान)

विदूषक : मित्र ! जानते हो ? वह इस घोर दुर्दिन में क्यों आई है ?

चारुदत्त : मित्र ! समझ नहीं पड़ता।

विदूषक : मैं तो समझ गया हूँ। रत्नावली का मूल्य कम है, और सुवर्ण आभूषण का मूल्य अधिक था। तभी वह संतुष्ट नहीं है। कुछ और माँगने आई है।

चारुदत्त : (स्वगत) यहाँ से वह संतुष्ट हो कर जायेगी।

[**शुभ्र अभिसारिका-वेश धारण किये वसंतसेना, छत्रधारिणी दासी और विट का प्रवेश**]

विट : (**वसंतसेना को देख कर**) सुरत के समय लज्जा की सखी, प्रिय पथिकों के स्नेह को बढ़ाने वाली, संकेत-स्थल की ओर चंचलता से जाती हुई ये कमल से रहित लक्ष्मी के समान है, कामदेव का सुकुमार अस्त्र है, कुलवती स्त्रियों के लिये शोक का कारण है और कामरूपी वृक्ष का सुंदर फूल है।

वसंतसेने ! देखो ! देखो !

विरहिणी स्त्रियों के हृदयों-से मलिन मेघ पर्वत-शिखर पर गर्जन कर रहे हैं ! उनके निनाद से मयूर सहसा पंखों से आकाश को व्यजन-सा कर रहे हैं। वर्षा के जल से भींगे, कीचड़-सने मुख वाले मेंढक जल पी रहे हैं। मोर मधुर स्वर से बोल रहे हैं, कदम्ब वृक्ष दीपकों-से फूल रहे हैं। कुलकलंकित करने वाले बादलों के द्वारा चंद्रमा संन्यासी की भाँति ढँक गया है। नीच कुलजात कुलटा युवती की तरह बिजली एक जगह नहीं ठहर रही है।

वसंतसेना : भाव ! आपने ठीक कहा। सौत की तरह यह क्रुद्ध रात बार-बार मुझे मना करती है और पथ को रोकती है।

कहती है—मूर्खे ! मेरे समान निविड़ पयोधरा[1] तुम प्रियतम-रमण करोगी तो मुझे क्या लाभ होगा ?

विट : यही सही । तुम ऐसे ही उपालंभ दो ।

वसंतसेना : भाव ! नारी की स्वाभाविक हिंसा-वृत्ति धारण करने वाली इस रात्रि की निंदा से हानि क्या है ? देखो ! मेघ बरसे या गरजे या वज्र ही क्यों न गिराये ? रमण करने को जाती हुई स्त्रियाँ कभी गर्मी-सर्दी नहीं गिनतीं ।

विट : वसंतसेने ! देखो-देखो ! वायु-सा चंचल, वेगवान, बाणों के समान जल बरसाने वाला, युद्ध के नगाड़ों-सा गंभीर गर्जन करने वाला और पताका की भाँति बिजली चमकाने वाला मेघ आकाश में मंद-मलिन चंद्र-कांति को वैसे ही ढँक लेता है जैसे नगर के बीच मंद-पराक्रम शत्रु का विजयी राजा सर्वस्व छीन लेता है ।

वसंतसेना : ठीक कहते हो; गजराज-से नीले, जल भरे होने के कारण विशाल उदर वाले, बिजली और बक-पंक्ति से चित्रित, गर्जन करते हुए मेघों से विरहियों के हृदय में शूल से चुभ रहे हैं ! हाय ! तब परदेशी विरही पतियों के वध के समय बजने वाले नगाड़े की तरह यह हताश और मूर्ख बगुले, कटे पर नमक छिड़कने की तरह, 'प्रावृड्' 'प्रावृड्'[2] क्यों चिल्ला रहे हैं !

विट : वसंतसेने ! ठीक बात है ! इसे भी तो देखो ! बक-पंक्तिरूपी सफेद पगड़ी पहन कर, बिजलीरूपी चमर धारण करके

---

१. स्त्री है पयोधरा—स्तनों वाली, रात है पयोधरा—बादलों वाली ।

२. बगुलों की आवाज की समानता दिखलाने वाला शब्द, जिसका अर्थ है—वर्षा—प्रावृट् । इसी का हिन्दी रूप है—पावस । जैसे वर्षा ऋतु का बरसात ।

आकाश-मण्डल, मतवाले हाथी की समानता करने का इच्छुक हो रहा है।

वसंतसेना : देखो ! विद्वन् ! देखो ! भींगे हुए तमाल के पत्तों जैसे मेघों से आकाश सूर्य्य विहीन हो रहा है। पानी की धाराओं से बाणों से बिंधे हाथियों की तरह वल्मीक[1] नष्ट हो रहे हैं। सोने के दीपक की-सी बिजली आकाशरूपी अट्टालिका में डोल रही है। जैसे बलहीन पति की स्त्री को अन्य पुरुष छीन ले जाता है, वैसे ही मेघ ने चाँदनी को हर लिया है।

विट : वसंतसेने ! आपस में एक दूसरे पर हमला करते हुए हाथियों जैसे, बिजलीरूपी रस्सी से कमर पर बँधे हुए, पानी बरसाते हुए बादल, मेघराज इन्द्र की आज्ञा से, चाँदी की रस्सियों जैसी जल-धाराओं के सहारे पृथ्वी को ऊपर उठा रहे हैं। तरङ्गों से भरे समुद्र जैसे, प्रबल वायु की चपेट से चंचल, भैंसे के-से काले और चंचल बिजली से युक्त मेघ की मणिमय बाणों की वृष्टि-धारा से उत्कट गंधशालिनी और नये अंकुरों से हरी-हरी धरती विदीर्ण हो रही है।

वसंतसेना : विद्वन ! मयूर स्पष्ट ही इसे 'आओ-आओ' कह कर मीठे स्वर से पुकार रहे हैं। हंस कमल वन छोड़ कर उद्विग्नता से इसे घृणा से देख रहे हैं और बक-पंक्तियाँ चंचल स्फुरित-सी इससे आलिंगन कर रही हैं। ऐसा है यह मेघ जो दिशाओं को काजल-सा काला करता हुआ घूम रहा है।

विट : सचमुच ! कमल-समूह जैसी आँखें अब हिलना भी भूल गई हैं, रात और दिन का पता नहीं चलता। बिजली के कारण

---

१. दीमकों के बनाये टीले—मिट्टी के ढेर।

कभी तो अंधकार खो जाता है और कभी जब बिजली नहीं रहती तो सब पर छा जाता है। दिशा का मुख ढँक गया है। जलधारा के घर में रहने वाले फैले हुए मेघ के स्थान—आकाश में बादल का छत्र तान कर यह संसार चुपचाप सो रहा है।

वसंतसेना : भाव ! जैसे बुरे आदमियों के साथ किये उपकार विलीन हो जाते हैं, वही नक्षत्रों का हाल है। पति से छोड़ी हुई स्त्रियों की तरह दिशाएँ शोभाहीन हो गई हैं। इंद्र के वज्र की आग से हृदय से शोक-भरा आकाश मानों पिघल कर पृथ्वी पर जल के रूप में गिर रहा है। नई-नई संपत्ति पाने वाले आदमी की तरह बादल कितने रूप धारण कर रहा है। कभी ऊपर उमड़ता है, कभी नीचे फैलता है, कभी बरसता है, कभी गरजता है, और कभी घना अँधियारा कर देता है।

विट : आकाश बिजली से भस्म-सा हो रहा है। कभी वह सैकड़ों बक-पंक्तियों के कारण हँस उठता है। कभी इन्द्रधनुष से घनी वर्षा के बाण छोड़ता है, कभी घोर वज्रनाद करके सिंहनाद करता है। वायु से क्रुद्ध हो कर वह घूमता है, कभी साँप-सा काला हो कर घने बादलों द्वारा काला धूँआ पीने लगता है।

वसंतसेना : अरे मेघ ! तू बड़ा निर्लज्ज है। मैं प्रियतम के घर जाती हूँ। मुझे गर्जन से डरा कर तुम बरसते पानी की धारा जैसे हाथों से छूते हो ! अरे इन्द्र ! क्या मैं तुम पर पहले कभी अनुरक्त थी क्या ? कि तुम मुझे सिंह की भाँति मेघगर्जन करके रोकते हो ? प्रिय की आकांक्षा करके जाती प्रिया का पथ रोकना क्या उचित है ? तुमने गौतम की स्त्री अहिल्या के प्रति कामातुर हो कर तो झूँठ तक बोली थी कि मैं गौतम हूँ ! तुम तो कामपीड़ा को जानते हो ! इस मेघ को क्यों नहीं

रोकते ? वज्रधर ! तुम चाहे सिंह-गर्जन करो, या वर्षापात करो, चाहे असंख्य वज्र क्यों न गिरा दो ! पर प्रियतम से मिलने जाती हुई प्रमदाओं को नहीं रोक सकते ! बादल गरजते हैं तो गरजने दो क्योंकि पुरुष तो ममताहीन होते हैं। परंतु अरी बिजली ! क्या तू भी कामातुर प्रमदाओं का कष्ट नहीं जानती ?

विट : अधिक उपालम्भ रहने दें। यह तो आपका उपकार कर रही है बिचारी। ऐरावत के वक्षस्थल पर बँधी चपल सोने की रस्सी-सी है ये, मानों पर्वत के शिखर पर कोई सफेद पताका हो। देखो न ? इंद्र के घर में जलते दीपक के उजाले से यह तो तुम्हारे प्रियतम के घर को दिखा रही है ?

वसंतसेना : भाव ! अरे घर आ गया ?

विट : तुम संपूर्ण कलाओं में निपुण ठहरीं ? उपदेश की क्या जरूरत है तुम्हें ? फिर भी स्नेह कहता है कि कुछ अवश्य कहूँ। देखो। यहाँ जाने पर अधिक क्रोध नहीं करना कभी। क्रोध होगा तो न रति जागेगी, न काम। अपने प्रिय को तनिक कुपित कर दो, कुछ तुम हो जाओ, फिर वह मनाये तो तुम प्रसन्न हो जाओ और उन्हें भी प्रसन्न कर लो। अच्छा, अब किसी से कहूँ। अरे सुनो ! आर्य्य चारुदत्त से निवेदन कर दो कि फूले कदंब की गंध से सुरभित, मेघों से ढँके इस वर्षाकाल में, कामातुरा, प्रसन्न, जल से भींगे केश वाली वसंतसेना प्रियतम के घर आ गई है। बिजली की चमक से डरी हुई प्रियमिलनोत्सुका वह नूपुर में लगी कीचड़ धोती हुई द्वार पर स्थित है।

चारुदत्त : **(सुन कर)** मित्र ! देखो तो कौन पुकार रहा है ?

विदूषक : जैसी आपकी आज्ञा। (वसंतसेना के पास आ कर आदर से) आपका कल्याण हो !

वसंतसेना : आर्य्य ! प्रणाम करती हूँ। आपका स्वागत है। (विट से) भाव ! इस छत्रधारिणी दासी को आप देखें। यह आपके आधीन रहे।

विट : (स्वगत) इस कौशल से मैं तो घर लौटने की आज्ञा पा रहा हूँ। (प्रगट) अच्छा वसंतसेने ! यही होगा। गर्वभरी माया, छल और झूठ ही जिसकी जन्मभूमि है, धूर्त्तता ही जिसकी आत्मा है, सुरत की लोला ही जिसका भवन है, रमण का आमोद ही जिसका संचय है, उस वेश्यारूपी हाट की बेचने योग्य वस्तु अपने यौवन का उदारता से लेन-देन करो, और वही उसके मूल्य की सिद्धि बने !

[विट का प्रस्थान]

वसंतसेना : आर्य्य मैत्रेय ! तुम्हारे जुआरी कहाँ हैं ?

विदूषक : (स्वगत) अहा ! जुआरी कहने से तो प्रिय मित्र की प्रशंसा हो गई। (प्रगट) श्रीमती ! वे सूखे बाग में हैं।

वसंतसेना : आर्य्य ! सूखा बाग क्या होता है ?

विदूषक : जहाँ न खाया जाता है, न पान[1] किया जाता है।

[वसंतसेना मुस्कराती है।]

विदूषक : आइये, भीतर चलिये।

वसंतसेना : (धीरे से) यहाँ अब मुझे क्या कहना चाहिये ?

चेटी : जुआरी ! क्या संध्या सुखमय है न ?

वसंतसेना : कह भी सकूँगी मैं ?

---

१. मदिरा-पान, समझिये अंगरेज़ी में जिसे कहते हैं—Dry area.

चेटी : समय सब कहला लेगा।

विदूषक : आप प्रवेश करें।

वसंतसेना : (**भीतर प्रवेश कर, पास पहुँच कर फूलों से मारती हुई**) जुआरी! क्या तुम्हारा संध्याकाल सुखमय है ?

चारुदत्त : (**देख कर**) अरे ! वसंतसेना आ गई ! (**हर्ष से उठ कर**) प्रिये ! मेरी हर साँझ जागते बीतती है और सारी रात लंबी साँसें छोड़ते निकल जाती है। ओ विशाललोचने ! आज तुम पास रहोगी तो यह संध्या भी मेरे सारे शोकों को दूर कर देगी। मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूँ आसन लो। बैठो !

विदूषक : इधर बैठिये आसन पर।

[**वसंतसेना के बैठने पर सब बैठते हैं।**]

चारुदत्त : कान पर लटकते कदंब के फूल से वर्षा की बूँदें एक स्तन पर गिर रही हैं, मानो वह युवराज है जिसका अभिषेक किया जा रहा हो ! मित्र मैत्रेय ! वसंतसेना के दोनों वस्त्र भींग गये हैं ! इनके लिये और वस्त्र लाओ !

विदूषक : जैसी आपकी आज्ञा।

चेटी : आर्य्य मैत्रेय ! रहने दें। मैं ही आर्य्या की सेवा करूँगी।

[**साड़ी लाती है, ओढ़नी भी।**]

विदूषक : (**धीरे से**) मित्र ! मैं श्रीमती से कुछ पूछना चाहता हूँ।

चारुदत्त : पूछ लो।

विदूषक (**प्रगट**) चंद्रमा को ढँक कर छाने वाले मेघों के घोर अंधकार में आप किसलिये आई हैं ?

चेटी : आर्य्ये ! यह बड़ा भोला ब्राह्मण है।

वसंतसेना : नहीं, चतुर कहो चतुर !

चेटी : आर्य्या यह पूछने ही चली आई हैं कि रत्नावली का मूल्य कितना है ?

विदूषक : (**धीरे से**) अरे ! मैंने पहले ही कहा था कि रत्नावली का मूल्य कम है, आभूषण का अधिक था, यह संतुष्ट नहीं है, कुछ और चाहती है।

चेटी : यह उस रत्नावली को अपना समझकर भूल से जूए में हार गई। और जूए का सभाध्यक्ष राजदूत न मालूम किधर चला गया !

विदूषक : अरे ! आप तो हमारी बात को दुहराती हैं।

चेटी : जब तक वह सभाध्यक्ष ढूँढा जाता है, तब तक आप इस सुवर्ण आभूषण को रखें।

[**आभूषण दिखाती है। विदूषक सोचता है।**]

चेटी : आप इसे बड़ी आँखें गड़ाकर देख रहे हैं ? क्या आपने इसे पहले कभी देखा है ?

विदूषक : श्रीमती ! इसकी सुन्दर बनावट की कारीगरी मेरी आँखों को खींच रही है।

चेटी : आर्य्य ! आपकी आँखें धोखा खा रही हैं। यह वही स्वर्णाभूषण है।

विदूषक : (**सहर्ष**) मित्र ! यही है वह आभूषण जिसे हमारे घर से चोर चुरा ले गये थे।

चारुदत्त : मित्र ! हमने धरोहर के लिये जो छल किया था, वही इन्होंने रत्नावली के लिये किया है। यह सब धोखा है।

विदूषक : मित्र ! मैं अपने ब्राह्मणत्व की शपथ खा कर कहता हूँ कि यह वही सोने का आभूषण है।

चारुदत्त : हमारे लिये तो यही अच्छा है।

विदूषक : (धीरे से) मैं पूछता हूँ, यह इसे कहाँ से मिला।

चारुदत्त : पूछो, कोई हर्ज नहीं।

विदूषक : (चेटी के कान में) यह बात है!

चेटी : (विदूषक के कान में) बिल्कुल।

चारुदत्त : आप दोनों क्या कानाफूसी कर रहे हैं। हम क्या बाहर के हैं?

विदूषक : (चारुदत्त के कान में) यह बात है।

चारुदत्त : भद्रे! सचमुच क्या यह वही सुवर्णाभूषण है?

चेटी : आर्य्य! वही है।

चारुदत्त : भद्रे! मैंने अच्छे वचन को कभी खाली नहीं जाने दिया। इसलिये यह अंगूठी लो।

[**अंगूठी उतारने को होता है, पर वहाँ अंगूठी न होने के कारण लज्जित होता है।**]

वसंतसेना : (स्वगत) इसी लिये तो मन आप पर रीझ जाता है।

चारुदत्त : (धीरे से) हाय रे कष्ट! संसार में दरिद्र को जीने से ही क्या लाभ? बदला लेने में असमर्थ आदमी का तो क्रोध भी बेकार और उसकी कृपा भी। पंखहीन चिड़िया, सूखा वृक्ष, जलहीन तालाब, और दाँत उखाड़ा हुआ साँप यह सब निर्धन की तरह बेकार जीवित रहते हैं। गरीब तो सूने घर-सा, सूखे कूँए-सा होता है। जिसे पुराने मित्र भी भूल जाते हैं, उसके तो आनन्द के समय भी बेकार ही चले जाते हैं!

विदूषक : इतना दुःख करना व्यर्थ है। (प्रगट हँसी के साथ) हमारी स्नान की साड़ी तो लौटाइये श्रीमती।

वसंतसेना : आर्य्य चारुदत्त! आपने इस तुच्छ रत्नावली के बराबर मेरा मन समझ कर अच्छा नहीं किया।

चारुदत्त : (लज्जा से मुस्करा कर) वसंतसेने ! असली बात कौन मानेगा कि सुवर्ण के आभूषण को चोरों ने चुरा लिया। सब मेरी निंदा करके कहते कि चारुदत्त धरोहर खा गया। निर्धनता निर्बल होती है। उस पर सब शंका करने लगते हैं।

विदूषक : प्रिय सखी ! क्या रात में आप यहीं सोयेंगी ?

चेटी : (हंस कर) आर्य्य मैत्रेय ! यह तो भोलेपन की हद है।

विदूषक : मित्र ! हम यहाँ चैन से बैठे थे पर अब इस मेघ ने हमें यहाँ से भीतर भेजने को वर्षा करना प्रारंभ किया है।

चारुदत्त : तुम ठीक कहते हो ! जैसे कमलनाल की सूई पंक के हृदय में उतर जाती है, वैसे ही बादल के हृदय को भेद कर आकाश, चन्द्रमा के ऊपर मुसीबत पड़ने से, रो रहा है। बलराम के नीले वस्त्र-सा मेघ, सज्जनों के हृदय-सी विमल और अर्जुन के प्रचण्ड बाणों-सी कठोर जलधारा गिरा कर इंद्र की मोतियों की राशि को निकाल-निकाल कर नीचे गिरा रहा है। प्रिये ! प्रेम और स्वातंत्र्य से अनुराग-भरी बिजली स्वयं आ गई है। पत्थरों पर कूटे हुए तमाल के पत्ते जैसे काले बादल का लेप लगाये, सुरभित, और संध्या के शीतल पवन से पंखा झला जाता आकाश उसके समीप है। वह उस आकाशरूपी प्रियतम से कैसा गाढ़ आलिंगन कर रही है !

[वसंतसेना शृंगार-भाव प्रदर्शित करती चारुदत्त का आलिंगन करती है।]

चारुदत्त : (स्पर्श का सुख पाते हुए आलिंगन करते हुए) अरे मेघ ! और गरज, और गरज, क्योंकि तेरे गर्जन से मेरी कामार्त्त देह वसंतसेना के स्पर्श से पुलकित और रागव्रती हो कर कदम्ब के फूलों की तरह विकसित और रोमांचित हो रही है।

विदूषक : अरे नीच दुर्दिन ! तू बड़ा नीच है कि आर्य्या वसंतसेना को बिजली से डरा रहा है !

चारुदत्त : मित्र ! उसकी निंदा न करो । यह घोर वर्षा करने वाला दुर्दिन सैकड़ों वर्ष तक रहे और बिजली ऐसे ही चमकती रहे। मुझ जैसे निर्धन को दुर्लभ प्रियतमा वसंतसेना का आलिंगन इसी के कारण तो मिला है ! उसी मनुष्य का जीवन धन्य है मित्र ! जो घर आई कामिनी के वर्षा से भींगे शीतल अंगों को अपने अंगों से आलिंगित करता है। वसंतसेने ! प्रिये ! हवा के वेग से हिलने के कारण, वेदिका-संचय के चंदोवे का छोर, जीर्ण होने के कारण बाँधने के खंभे में टिक नहीं रहा है। यह चित्रित भीत भी चूने के लेप के गल जाने के कारण बरसते पानी से भीतर तक पानी सोख गई है। **(ऊपर देख कर)** अहा ! इंद्रधनुष ! प्रिये ! देखो तो ! बिजली जैसी जीभ हिला कर, इंद्र धनुष-सी विशाल भुजाएँ फैलाए, काले घने बादलों जैसी दाढ़ी फहरा कर आकाश ने मुँह खोल कर जंभाई ली है। आओ अब भीतर चलें। **(उठ कर चलते हैं।)** वीणा के निरंतर बजने की तरह, ताल पर ही तालवन में जोर से, वृक्ष-शाखाओं पर गंभीर, पर्वतों पर कठोर और जल में प्रचंड रूप से मूसलाधार वर्षा हो रही है।

[सब का प्रस्थान]

[दुर्दिन नामक पाँचवाँ अङ्क समाप्त]

छठा अङ्क

[चेटी का प्रवेश]

चेटी : क्या अभी तक आर्य्या वसंतसेना नहीं उठीं ? अच्छा ! चल कर जगा दूँ ।

[अभिनयपूर्वक घूमती है ।]

[शरीर ढँक कर सोई हुई वसंतसेना का प्रवेश]

चेटी : (देख कर) उठिये ! उठिये आर्य्या ! भोर हो गई !

वसंतसेना : (जाग कर) क्या रात ही सवेरा हो गई ?

चेटी : हमारे लिये तो सवेरा हो गया । आपके लिये अभी रात ही है ।

वसंतसेना : अरी हमारे जुआरी कहाँ गये ?

चेटी : आर्य्ये ! वर्द्धमानक से कह कर आर्य्य चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक पुराने बाग़ में गये हैं ।

वसंतसेना : क्या कह गये हैं ?

चेटी : रात में बैलगाड़ी ठीक करो। वसंतसेना उस पर चढ़ कर जाये।

वसंतसेना : मुझे कहाँ जाना है ?

चेटी : वहीं आर्य्ये ! जहाँ चारुदत्त हैं।

वसंतसेना : (**चेटी से आलिंगन कर**) रात मैं उन्हें ठीक से नहीं देख सकी। आज दिन में अच्छी तरह देखूँगो। क्यों री ? क्या मैं यहाँ अंत.पुर में हूँ ?

चेटी : केवल अंतःपुर में ही नहीं बल्कि आप तो सबके हृदयों में घुस गई हैं।

वसंतसेना : क्या मेरे आने से आर्य्य चारुदत्त के परिवार के लोग दुखी हैं ?

चेटी : दुखी होंगे।

वसंतसेना : कब ?

चेटी : जब आप चली जायेंगी।

वसंतसेना : तब तो पहले मैं ही दुखी होऊँगी। अरी ! इस रत्नावली को ले जा कर मेरी बहिन आर्य्या धूता को दे आ। कहना कि यह दासी वसंतसेना आर्य्य चारुदत्त के गुणों के बस में है। इसी लिये आपके भी बस में है। यह रत्नावली आर्य्या धूता के गले में ही रहनी चाहिये।

चेटी : आर्य्ये ! और जो आर्य्य चारुदत्त आर्य्या धूता पर क्रुद्ध हुए तो ?

वसंतसेना : नहीं होंगे, तू ले जा।

चेटी : (**ले कर**) जैसी आपकी आज्ञा। (**जाती है, फिर प्रवेश करती है।**) आर्य्या धूता कहती हैं कि आर्य्यपुत्र ने प्रसन्न हो कर इसे आपको दिया है, अतः मेरा इसे लेना उचित नहीं। आपको जानना

चाहिये कि मेरे तो एकमात्र आभूषण आर्य्यपुत्र हैं।

[रोहसेन को ले कर रदनिका का प्रवेश]

रदनिका : आओ वत्स ! इस गाड़ी से खेलें।

बालक : (करुणा-भरे स्वर से) रदनिके ! मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या करना है ? मुझे तो सोने की गाड़ी दे।

रदनिका : (दुख-भरा निश्वास ले कर) बेटा ! हमारे यहाँ सोना कहाँ ? पिता जब फिर धनी हो जायें तब सोने की गाड़ी से खेलना। तब तक इस बालक का मन बहलाऊँ। आर्य्या वसंतसेना के पास चलूँ। (पास जा कर) आर्य्ये ! प्रणाम करती हूँ।

वसंतसेना : आ ! रदनिके ! यह किसका बालक है ? बिना एक आभूषण पहने भी इसका चंद्रमा का-सा मुख मेरे हृदय को हर्षित कर रहा है।

रदनिका : यह आर्य्य चारुदत्त का पुत्र रोहसेन है।

वसंतसेना : (हाथ फैला कर) आ बेटा ! आ ! मेरी गोद में आ। (गोदी में बिठा कर) बिल्कुल पिता का-सा रूप पाया है।

रदनिका : न केवल रूप, कहती हूँ शील भी। इसी से आर्य्य चारुदत्त अपना मन बहलाते हैं।

वसंतसेना : पर यह रोता क्यों है ?

रदनिका : अपने पड़ोसी गृहपति के लड़के की सोने की गाड़ी से यह अभी खेल चुका है। वह उस गाड़ी को ले गया। फिर भी यह माँगने लगा तो मैंने मिट्टी की गाड़ी बना कर इसे दे दी। पर यह कहता है कि—रदनिके ! मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या ? मुझे वही सोने की गाड़ी दो।

वसंतसेना : हाय रे हाय ! यह भी दूसरे के धन से संतापित हो रहा है ? विधाता ! कमल के पत्ते पर गिरी पानी की बूंद

की तरह तुम मनुष्यों के भाग्य से खेला करते हो! रो मत बेटा ! तुम सोने की गाड़ी से ही खेलोगे !

रोहसेन : रदनिके ! यह कौन है ?

वसंतसेना : तुम्हारे पिता के गुणों से विजिता दासी ।

रदनिका : पुत्र ! आर्य्या तुम्हारी माता होती हैं ।

रोहसेन : रदनिके ! तुम झूँठ कहती हो । यदि यह आर्य्या मेरी माता हैं तो फिर इनके पास आभूषण कैसे हैं ?

वसंतसेना : पुत्र ! कैसे प्यारे-प्यारे मुँह से ऐसी करुण बात कहता है ? **(आभूषणों को उतार कर रोती हुई)** लो अब मैं तुम्हारी माता हो गई । इन गहनों को लो और इनसे सोने की गाड़ी बनवा लो ।

रोहसेन : नहीं ! मैं नहीं लूँगा । तुम तो रो रही हो ।

वसंतसेना : **(आँसू पोंछ कर)** वत्स ! नहीं रोऊँगी । तुम खेलो । **(मिट्टी की गाड़ी गहनों से भर कर)** पुत्र ! सोने की गाड़ी बनवा लो ।

[बालक को लेकर रदनिका का प्रस्थान]

चेट : **(बैलगाड़ी पर बैठा हुआ प्रवेश करके)** रदनिके ! रदनिके ! आर्य्या वसंतसेना से कह दो कि पर्दों से ढँकी बैलगाड़ी बगल के द्वार पर खड़ी है ।

रदनिका : **(प्रवेश कर)** आर्य्ये ! वर्द्धमानक कहता है कि बगल के द्वार पर गाड़ी आ गई है ।

वसंतसेना : सखि ! क्षण भर ठहर ! तब तक मैं तैयार हो लूँ ।

रदनिका : **(बाहर जा कर)** वर्द्धमानक ! क्षण भर ठहरो ! आर्य्या अभी तैयार हो कर आती हैं ।

चेट : अरे रे ! मैं भी गाड़ी ढकने वाला कपड़ा भूल आया हूँ ।

जल्दी से उसे ले आऊँ। नाथ रखा है फिर भी बैल भागना चाहते हैं ! अच्छी बात है, गाड़ी हाँकते समय इन्हें खूब भगाऊँगा। (प्रस्थान)

वसंतसेना : सखि ! जा गहने-वहने ले आ। मैं शृंगार कर लूँ।

[बैलगाड़ी पर चढ़ा हुआ स्थावरक चेट आता है।]

चेट : राजा के साले संस्थानक ने मुझे आज्ञा दी है कि स्थावरक ! जल्दी गाड़ी ले कर पुष्पकरण्डक नामक पुराने उपवन में आ ! मैं वहीं जा रहा हूँ। बैलो ! बढ़े चलो। (घूम कर और देख कर) क्या गाँव की गाड़ी से रास्ता रुका हुआ है ? (गर्व से) अरे ए ! हटो ! हटो ! (सुन कर) क्या कहते हो ? 'यह किसकी गाड़ी है ?' यह राजा के साले संस्थानक की गाड़ी है। जल्दी हट जाओ। (देख कर) दूसरे जूए के सभाध्यक्ष की तरह मुझे देख कर, जूआरी की तरह भागते हुए वह आदमी अपने को छिपाता, दूसरी तरफ क्यों भाग गया ? कौन है यह ? अरे न जाने मुझे क्या पड़ी है ? मुझे तो जल्दी करनी चाहिये ! अरे ए गँवारो ! हटो, हटो ! क्या कहते हो ? 'क्षण भर ठहरो ! मुझे गाड़ी घुमा लेने दो !' अरे ए ! राजा के साले संस्थानक का वीर, मैं भला अपनी गाड़ी हटा कर तुम्हारी गाड़ी निकलने दूँगा ? पर यह गरीब अकेला ही है। ऐसा ही करूँगा। आर्य्य चारुदत्त के बाग़ के द्वार पर इस गाड़ी को रोकता हूँ। (गाड़ी खड़ी करके) अभी आता हूँ। (प्रस्थान)

चेटी : आर्य्ये ! धुरी की आवाज़ सुनाई दे रही है, बैलगाड़ी आ गई।

वसंतसेना : अरी ! चल ! मेरा मन भी उमड़ रहा है। चल, द्वार दिखा।

चेटी : आर्य्ये ! इधर से चलें।

वसंतसेना : (**घूम कर**) प्रिये ! तू यहीं आराम कर ।

चेटी : जैसी आपकी आज्ञा ।

[**प्रस्थान**]

वसंतसेना : (**दाहिनी आँख फड़कने का अनुभव करती हुई, बैलगाड़ी पर चढ़ कर**) मेरी दाईं आँख क्यों फड़क रही है ? चारुदत्त के तो दर्शन से ही सारा अशुभ शकुन दूर हो जायेगा ।

स्थावरक चेट : (**आ कर**) रास्ता रोकने वाली गाड़ी हट गई । अब चलना चाहिए । (**गाड़ी पर चढ़ कर, चला कर, स्वगत**) गाड़ी में कुछ भारीपन मालूम देता है । या इसलिये कि मैं गाड़ी हटाते में थक गया हूँ । कहीं इसीसे तो भारीपन नहीं लगता ? अब चलूँ । चले चलो बैलो ! चले चलो !

नेपथ्य में : अरे रक्षकगणो ! आप लोग अपने-अपने पहरे के स्थान पर तैयार खड़े रहें । आज गोपपुत्र आर्य्यक बन्दीगृह को तोड़ कर, कारागार-रक्षक को मार कर, बंधन काट कर, कारागार से निकल कर भागा जा रहा है । उसे पकड़ो ! पकड़ो !

चेट : (**स्वगत**) इस नगरी में बड़ा आतङ्क छाया हुआ है । यहाँ से जल्दी से निकल चलना ही ठीक है । (**प्रस्थान**)

आर्य्यक : राजा के भयानक बंधनरूपी कपट की आपत्ति, उसके दुःख-सागर को पार कर, बंधन तोड़ने वाले हाथी की तरह, अभी भी पाँवों में लटकी बेड़ियाँ लिये मैं भाग रहा हूँ । किसी सिद्ध ज्योतिषी ने कहा कि 'आर्य्यक राजा होगा' । बस इसी से डर कर मुझे राजा पालक ने बंदीगृह में डाल कर बेड़ियों से जकड़ दिया ? प्रिय मित्र शर्विलक ने मुझे इस बंधन से छुड़ाया है । (**आँसू पोंछ कर**) यदि मेरे भाग्य में ही लिखा हुआ है कि मैं राजा होऊँगा तो इसमें मेरा क्या अपराध है ? मुझे जंगली हाथी की

तरह क्योंकर कारागार में डाला गया ? दैवी शक्ति को कौन काट सकता है ? लेकिन मुझे राजा से मेल कर लेना चाहिये, क्योंकि बली से विरोध करने से परिणाम अच्छा नहीं होता। पर मैं अभागा ! जाऊँ भी कहाँ ? (देख कर) यह किसी सज्जन का घर है जिसके बगल के दरवाजे की किवाड़ें खुली हैं। पुराना हो गया है घर ! तभी जीर्ण-सा है। सामने के बड़े फाटक की साँकड़ भी नहीं लगी है। निश्चय ही घर का मालिक भी मेरी ही तरह अभागा है जो गरीबी की मुसीबत से घिरा हुआ ऐसी हीन अवस्था में रहता है। मैं तब तक इसी में घुस जाऊँ !

नेपथ्य में : बढ़े चलो बैलो ! आगे चलो।

आर्य्यक : (सुन कर) अरे ! बैलगाड़ी इधर ही आ रही है। अवश्य ही यह कहीं सामाजिक उत्सव के लिये नहीं जा रही है, जिस पर कोई दुश्चरित्र व्यक्ति बैठा हो, क्योंकि यह गाड़ी बिल्कुल शांत है। या तो इसमें दुल्हिन जा सकती है, या किसी भले आदमी को ले जाने योग्य है। पवित्र गाड़ी विधाता ने मुझे बाहर ले जाने के लिये ठीक समय पर यहाँ भेज दी है।

[वर्द्धमानक चेट का बैलगाड़ी के साथ प्रवेश]

वर्द्धमानक चेट : आश्चर्य्य है ! मैं गाड़ी ढँकने का कपड़ा भी ले आया। रदनिके ! आर्य्या वसंतसेना से कह दो : तैयार गाड़ी खड़ी है, उस पर चढ़ कर आर्य्य पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में चलें।

आर्य्यक : (सुन कर) यह गणिका की गाड़ी है और बाहर जायेगी। इसी पर चढ़ चलूँ।

[धीरे से चढ़ता है। पाँव की जंजीर धीरे से बजती है।]

चेट : (**सुनकर**) नूपुर का शब्द सुनाई पड़ता है। अतः वसंतसेना आ गई। आर्य्ये ! बैलों की नाक नाथी हुई है, जिससे वे कुपित हो रहे हैं। आप जरा पीछे ही दाबे रहें।

[**आर्य्यक पीछे की ओर खिसक जाता है।**]

चेट : पाँव उठा कर गाड़ी पर चढ़ते समय बजते हुए नूपुर की ध्वनि अब बन्द हो गई। गाड़ी भी भारी हो गई। इससे लगता है वसंतसेना अब गाड़ी पर चढ़ गई ! चलूँ। चलो ! ओ बर्द ! बढ़े चलो !

[**घूमता है।**]

वीरक : (**प्रवेश कर**) अरे हे ! जय, जयमान, चन्दनक, मङ्गल, पुष्पभद्र, सब प्रधान पुरुषो ! आप लोग विश्वास-भरे-से ऐसे निश्चल क्यों पड़े हैं ? जो गोपपुत्र आर्य्यक राजा पालक के बन्दीगृह में था, वह राजा के हृदय और उसकी शृंखलाओं को एक साथ तोड़ कर भाग निकला है। अरे ऐ ! तुम सामने की पूर्वीय गली के मुँह पर तैयार रहो। तुम उधर पश्चिम की तरफ ! तुम दक्षिण! तुम उत्तर के मार्ग को रोको ! मैं इस ऊँचे टीले पर चंदनक के साथ चढ़ कर देखता हूँ। चन्दनक ! तुम इधर आओ !

[**घबराया-सा चंदनक आता है।**]

चंदनक : ओ वीरक ! विशल्य, भीमाङ्गद, दण्डकालक, दण्डशूर आदि वीरो ! विश्वास से मन लगा कर आओ ! 'आर्य्यक को पकड़ने की जल्दी कोशिश करो। अभी से उसे ढूंढने में लग जाओ जिससे क्षत्रिय राजा पालक की राजलक्ष्मी गोपपुत्र आर्य्यक के हाथ में न चली जाये ! बाग, सभा, मार्ग, नगर, हाट, घर या जहाँ कहीं भी संदेह हो, उन सब जगहों में शीघ्र आर्य्यक को ढूँढो। खोज निकालो उस बेड़ियाँ काटने वाले को ! अरे

वीरक ! तुम आर्य्यक के कौन-कौन-से चिह्न बताते हो ? उसे बन्दीगृह से लेकर कौन भागा ? किसकी आठवीं राशि पर सूर्य्य है ? चन्द्रमा किसकी चौथी राशि पर है ? किसकी छठी राशि पर शुक्र है ? किसकी पाँचवीं राशि पर मंगल है ? बताओ ! किसकी जन्मराशि से छठी राशि पर बृहस्पति है, और किसकी नवीं राशि पर शनि है कि मेरे—चंदनक के जीते जी, गोपपुत्र आर्य्यक को बन्दीगृह से छुड़ा ले गया ।[1]

वीरक : योद्धा चंदनक ! मैं तुम्हारे हृदय की कसम खा कर कहता हूँ कि उसे कोई अभी भी छुड़ा कर ले गया है। क्योंकि जब वह निकल के भागा है तब सूर्य्योदय पूरा नहीं हुआ था ।

चेट : बढ़ो बैलो । बढ़े चलो ।

चंदनक : (**देख कर**) वह देखो ! उधर ! कपड़ों से ढँकी एक बैलगाड़ी बीच रास्ते पर जा रही है ! जरा ध्यान से सोच कर देखो कि यह किसकी गाड़ी है ? और कहाँ जा रही है ?

वीरक : (**देख कर**) अरे गाड़ी वाले ! गाड़ीं आगे मत बढ़ाओ ! यह किसकी गाड़ीं है ? इस पर कौन बैठा है ? यह गाड़ीं कहाँ जायेगी ?

चेट : यह आर्य्य चारुदत्त की गाड़ी है। इस पर आर्य्या वसंतसेना बैठी हैं। चारुदत्त के मनोरंजन के लिये यह पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में जा रही हैं !

वीरक : (**चंदनक के पास जा कर**) यह गाड़ीवाला कहता है : यह आर्य्य चारुदत्त की गाड़ी है, इस पर वसंतसेना है और गाड़ी पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में जा रही है ।

---

१. यह ग्रह जब इन राशियों पर होते हैं, तब ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मनुष्य का अनिष्ट होता है ।

चंदनक : जाने दो।

वीरक : बिना देखे हुए ही ?

चंदनक : हाँ-हाँ।

वीरक : किस विश्वास पर ?

चंदनक : आर्य्य चारुदत्त के विश्वास पर।

वीरक : आर्य्य चारुदत्त कौन है ? और वसंतसेना कौन है कि बिना जाँच किये ही यह गाड़ी चली जायेगी।

चंदनक : अरे ! तुम आर्य्य चारुदत्त को नहीं जानते ? और वसंतसेना को भी नहीं जानते ? यदि तुम इन दोनों को नहीं जानते तो चंद्रमा और चाँदनी को भी नहीं जानते। विपत्ति में पड़े हुओं के उद्धार करने वाले, चारों समुद्रों के श्रेष्ठ रत्न, स्वभाव में कमल और चंद्रमा जैसे आर्य्य चारुदत्त का कौन नहीं जानता ? इस नगरी में दो ही अच्छे व्यक्ति हैं, एक आर्य्या वसंतसेना, और दूसरे धर्मनिधि चारुदत्त।

वीरक : अरे चंदनक ! मैं आर्य्य चारुदत्त और वसंतसेना को अच्छी तरह जानता हूँ, लेकिन राजा का काम आने पर अपने पितरों को भी नहीं पहँचानता।

आर्य्यक : (स्वगत) यह वीरक मेरा पुराना शत्रु है और चंदनक पुराना मित्र है। एक ही राजकाज में रह कर दोनों के स्वभाव में बड़ा भेद है जैसे चिता की अग्नि और वैवाहिक अग्नि में अंतर होता है।

चंदनक : तुम राजा के प्रधान विश्वस्त सेनापति हो। लो मैंने बैलों को पकड़ लिया। अब तुम देख लो !

वीरक : तुम भी राजा के विश्वस्त सेनापति हो। तुम्हीं जो देखो।

चंदनक : क्या मेरे देख लेने से तुम्हारा देखना हो जायेगा ?

वीरक : तुमने देख लिया तो समझो कि राजा पालक ने देख लिया।

चंदनक : अरे ! इस गाड़ी के पर्दे को उठाओ !

[**चेट गाड़ी का पर्दा उठाता है।**]

आर्य्यक : (**स्वगत**) रक्षकगण मुझे देख रहे हैं ? हाय ! दुर्भाग्य से मेरे पास शस्त्र भी नहीं। तो फिर मैं भीम की भाँति बाहु-युद्ध ही करूँगा ! बाहु-युद्ध करते हुए मर जाना अच्छा है, न कि बंदीगृह में बद हो कर जीवित रहना। लेकिन यह साहस करने का अवसर नहीं है।

[**चंदनक गाड़ी पर चढ़ कर देखता है।**]

वीरक : मैं शरणागत हूँ।

चंदनक : (**संस्कृत में बोलता है।**) शरणागत को अभय देता हूँ।

आर्य्यक : जो शरणागत को छोड़ता है, उसे विजयलक्ष्मी छोड़ देती है, उसे उसके मित्र छोड़ देते हैं, यहाँ तक कि उसे उसके बंधु-बांधव भी छोड़ जाते हैं। वह सदा उपहास का पात्र बनता है।

चंदनक : गोप-पुत्र आर्य्यक बाज से डरे हुए पक्षी की भाँति व्याध के हाथ में पड़ गये हैं। (**सोच कर**) यह निरपराध शरणागत, आर्य्य चारुदत्त की गाड़ी पर चढ़ा हुआ आर्य्यक, मेरे प्राणदायक आर्य्य शर्विलक का मित्र है। दूसरी ओर राजा की आज्ञा है। इस समय क्या करूँ जो उचित रहे ? जो कुछ भी हो, मैंने तो पहले ही इसे अभयदान दे दिया ! शरणागत को अभयदान देने में, परोपकार में तत्पर रहने में यदि किसी कारण से मृत्यु भी हो जाये तो उसमें भी प्रशंसा ही होती है, निन्दा नहीं (**भय सहित उतर कर**) मैंने आर्य्य को देख लिया (**इतना आधा**

कह कर सहसा) नहीं, आर्य्या वसंतसेना को देख लिया। वह कहती है कि यह न आपके लिये उचित ही है, न योग्य ही कि मुझे आर्य्य चारुदत्त से मिलने जाते समय इस प्रकार सड़क पर रोक लिया गया है।

वीरक : चंदनक ! मुझे संदेह होता है।

चंदनक : संदेह !! क्यों ?

वीरक : तुम घबराये लगते हो ! तुम्हारी आवाज साफ़ ही भर्रा गई है और पहले तुमने कहा कि आर्य्य को देखा और फिर कहा कि आर्य्या को देखा !

चंदनक : तुम्हें अविश्वास क्यों है ? हम दक्षिण के रहने वाले अस्पष्ट और अशुद्ध बोलते ही हैं। खस, खत्ति, खड्ग, खडट्टो, कर्णाट, कर्णप्रावरण, द्रविड़, चोल, चीन, बर्बर, खेट, खान, मुख, मधुघात, इत्यादि म्लेच्छ जाति वाले हम अनेक देशभाषाओं से अनजान रहने के कारण, देखा गया, या देखी गई, आर्य्य या आर्य्या, ऐसे प्रयोग किया ही करते हैं।

वीरक : अच्छा मैं भी देख लेता हूँ, क्योंकि यह राजा की आज्ञा है। मैं राजा का विश्वस्त पात्र हूँ।।

चंदनक : तो क्या मैं विश्वासपात्र नहीं रहा ?

वीरक : पर स्वामी की ऐसी ही आज्ञा है।

चंदनक : (**स्वगत**) यदि यह कहा जाये कि गोप-पुत्र आर्य्यक आर्य्य चारुदत्त की गाड़ी पर चढ़ कर जा रहा है तो आर्य्य चारुदत्त भी राजदण्ड के भागी होते हैं। (**सोच कर**) क्या उपाय है ? ठीक है। कर्णाट देश वालों का-सा झगड़ा शुरू करता हूँ। (**प्रगट**) अरे वीरक ! जब मैंने देख लिया, तब तुम देखने वाले कौन होते हो ?

वीरक : तो तुम्हीं कौन होते हो ?

चंदनक : तुम अपने को बहुत पूजनीय मानते हो वीरक ! अपनी जाति तो याद करो !

वीरक : (क्रोध से) क्या है मेरी जाति !

चंदनक : नीच जाति का नाम कौन ले !

वीरक : बोलना पड़ेगा !

चंदनक : नहीं कहूँगा ! मैं अपने अच्छे स्वभाव के कारण तुम्हारी जाति जानते हुए भी नहीं बताऊँगा। मन में ही रहने दो। कैथ फोड़ कर भी क्या निकलेगा !

वीरक : नहीं-नहीं ! कहो ! कहो !

[**चंदनक इशारा करता है।**]

वीरक : इसका मतलब ?

चंदनक : बायें हाथ में उस्तरा तेज़ करने को बटिया लिये, दायें हाथ में उस्तरा लिये तुम नाई, सेनापति बनने को आ गये हो !

वीरक : अरे चंदनक ! तुम भी बड़े माननीय हो न ? अपनी जाति की भी कुछ याद है ?

चंदनक : चंदन की तरह शुभ्र मुझ चंदनक की क्या जाति है ?

वीरक : नीच जाति का कौन नाम ले ?

चंदनक : नहीं, बोलो !

[**वीरक इशारा करता है।**]

चंदनक : क्या मतलब ?

वीरक : अरे बकबक करने वाले ! तुम्हारी तो बहुत ही नीची जाति है। तुम्हारी माता दुंदुभी है, पिता ढोल है, और तुम्हारा भाई है करकट बाजा। फिर भी तुम सेनापति हो ?

चंदनक : (क्रोध से) चंदनक चमार है ? अच्छा तो गाड़ी देखो।

वीरक : अरे गाड़ी वाले ! गाड़ी रोक ! मैं देखूँगा ।

[**चेट गाड़ी रोक देता है । वीरक गाड़ी पर चढ़ना चाहता है, किंतु चंदनक उसके केश पकड़ कर उसे धरती पर गिरा के ठोकरें मारता है ।**]

वीरक : (क्रोध से उठ कर) अरे मैं वीरक, राजा का विश्वस्त सेनपति, राजाज्ञा का पालन कर रहा था, लेकिन तुमने केश पकड़ कर मुझे लात मारी है । तो सुनो, न्यायालय में मैं तुम्हें चतुरङ्ग[1] दण्ड न दिलवाऊँ तो मेरा नाम वीरक नहीं !

चंदनक : अरे जा ! तू सजा के न्यायालय में ही क्यों न जाये ? कुत्ते की तरह तू मेरा क्या बिगाड़ सकता है ?

वीरक : अच्छा देखूँगा । (प्रस्थान) ।

चंदनक : (चारों ओर देख कर) ओ गाड़ीवान ! जा ! जो कोई पूछे तो कहना कि यह गाड़ी चंदनक और वीरक से देखी जा चुकी है । आर्य्ये वसंतसेने ! यह संकेत मैं तुम्हें देता हूँ ।

[**तलवार देता है ।**]

आर्य्यक : (तलवार ले कर स्वगत, प्रसन्नता से) अहो ! मुझे शस्त्र मिल गया ! और मेरी दाईं भुजा फड़क रही है । अब सब मेरे अनुकूल हो गया । मैं अब अच्छी तरह से रक्षित हो गया ।

चंदनक : आर्य्ये ! मैं निवेदन करता हूँ कि तुम मुझे विश्वस्त मन से याद रखना । मैं किसी लोभ से ऐसा नहीं कह रहा, बल्कि प्रेम के बस में हो कर ऐसा कह रहा हूँ ।

आर्य्यक : चंदनक ! तुम चंदन जैसे शीतल हो । आज तुम दैववश मेरे

---

१. चार दण्ड—सिर मुँडाना, बेतं मारना, जुर्माना करना, बहिष्कार करना ।

मित्र बन गये। तुम्हारी याद रहेगी चंदनक! यदि सिद्धों की बात सच निकली!

चंदनक : ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य्य और चंद्रमा तुम्हें अभय दें। जिस तरह देवी ने शुम्भ-निशुम्भ[1] को मारा था उसी तरह तुम भी अपने शत्रुपक्ष का वध करो।

[**चेट गाड़ी ले जाता है।**]

चंदनक : (**नेपथ्य की ओर देख कर**) वह दूसरी जगह जाता हुआ मेरा प्रिय मित्र शर्विलक आर्य्यक के पीछे ही गया है। और मैंने राजा के विश्वस्त प्रधान सेनापति वीरक को भी क्रुद्ध कर दिया है। तो मैं भी पुत्र, भाई और सारे परिवार के साथ आर्य्यक के ही पास जाता हूँ।

[**प्रस्थान**]

[**प्रवहण-विपर्यक नामक छठा अंक समाप्त**]

---

१. दो राक्षस।

सातवाँ अङ्क

[चारुदत्त और विदूषक का प्रवेश]

विदूषक : आहा ! देखिये तो ! जीर्णोद्यान पुष्पकरण्डक की शोभा कितनी मनोहर है ?

चारुदत्त : मित्र ! वृक्ष वाणिज्य की भाँति शोभित हैं, फूल बेचने की वस्तु की तरह हैं और भ्रमर राजपुरुषों की भाँति राज का भाग लेते हुए घूम रहे हैं ।[1]

विदूषक : आइये, इसी शिला-खण्ड पर बैठिये, वैसे यह सुघर तो नहीं ।

चारुदत्त : (बैठ कर) मित्र ! वर्द्धमानक बड़ी देर लगा रहा है ।

विदूषक : मैंने तो कहा था कि वर्द्धमानक ! वसंतसेना को ले कर जल्दी चले आना ।

चारुदत्त : तब फिर देर का कारण क्या हो सकता है ? हो सकता है उसकी गाड़ी के आगे-आगे कोई धीमी-धीमी गति से चलने

---

१. व्यापारी का प्रकृति-पर्य्यवेक्षण ।

वाली गाड़ी आ रही हो और वह आगे निकलने के लिये मौका ही देख रहा हो। कहीं पहिया तो नहीं टूट गया, जो उसे बदलने में देरी हो रही है ? कहीं रास टूट गई हो तो ? बीच पथ पर कुछ लोग लकड़ी काट कर भी तो छोड़ जाते हैं जिससे रास्ता रुक जाता है। वह कहीं दूसरे रास्ते से आता हो ! या चिन्ता छोड़ कर वह बैलों को धीरे-धीरे मौज में हाँकता आ रहा है ?

[छिप कर बैठे हुए आर्य्यक और चेट का गाड़ी पर प्रवेश]

चेट : बढ़े चलो बर्दो ! बढ़े चलो।

आर्य्यक : (स्वगत) राजकर्मचारियों की दृष्टि से डरता हुआ मैं पैरों में पड़ी बेड़ी के कारण आज़ादी से भाग जाने में असमर्थ-सा इस सज्जन आर्य्य चारुदत्त की गाड़ी में चढ़ा ऐसे ही सुरक्षित जा रहा हूँ जैसे मादा कौए के घोंसले में उसके अनजान में ही कोयल का बच्चा पलता है। नगर से तो काफ़ी दूर आ गये। अब मैं बैलगाड़ी से उतर कर क्यों न इस घने पेड़ों के जंगल में घुस जाऊँ ? या गाड़ी के मालिक से मिलूँ ? जंगल में जाना तो बेकार है। लोग कहते हैं आर्य्य चारुदत्त शरणागत-वत्सल हैं। उनसे मिल कर ही जाऊँगा। वे मुझे विपत्ति-सागर से निकला हुआ देख कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे। ऐसी संकटमयी परिस्थिति पाने वाली मेरी देह साधु चारुदत्त के गुणों के कारण ही बच पाई है।

चेट : यही वह उद्यान है। यहीं चलूँ (पहुँच कर) आर्य्य मैत्रेय !

विदूषक : मित्र ! लो शुभ समाचार। वर्द्धमानक बुला रहा है। वसंतसेना आ गई लगती है।

चारुदत्त : इससे बढ़ कर प्रिय क्या है ?

विदूषक : दासीपुत्र ! इतनी देर क्यों लगाई ?

चेट : आर्य्य ! मैत्रेय ! गुस्सा न हों। गाड़ी का पर्दा भूल गया था इसलिये आने-जाने में देर हो गई।

चारुदत्त : वर्द्धमानक ! गाड़ी को घुमाओ। मित्र मैत्रेय ! वसंतसेना को उतारो !

विदूषक : क्या उसके पाँव बँधे हुए हैं कि स्वयं नहीं उतर सकती ? (**उठ कर पर्दा खोल कर**) यहाँ तो वसंतसेना नहीं, वसंतसेन है !

चारुदत्त : मित्र ! क्या परिहास है ! प्रेम की बेला देर नहीं सह सकती। लो मैं उतारता हूँ।

[**उठता है।**]

आर्य्यक : (**देख कर**) अरे ! यही गाड़ो के स्वामी हैं ! सुनने में ही अच्छे नहीं, देखने में भी सुंदर हैं। अब मैं निडर हो गया।

चारुदत्त : (**गाड़ी पर चढ़ कर**) अरे ! यह कौन हैं ? इनकी भुजाएँ हाथी की सूँड-सी है, कंधा सिंह का-सा विशाल और स्थूल है, वक्षस्थल अत्यंत प्रशस्त और लाल ताँबे-सी बड़ी-बड़ी आँखें। कैसी सुंदर आकृति है ! कोई महान् आत्मा हैं ! पर इनके रूप के प्रतिकूल, यह एक पाँव में बेड़ी कैसी ? आप कौन हैं ?

आर्य्यक : मैं शरणागत हूँ, मैं गोप-पुत्र आर्य्यक हूँ।

चारुदत्त : क्या वही जिसे राजा पालक ने घर से पकड़ कर बंदीगृह में डाल दिया था ?

आर्य्यक : हाँ वही।

चारुदत्त : दैव ने ही तुम्हें मेरे सामने लाया है। मैं अपने प्राण त्याग दूँगा कि जब तुम शरण में आये हो तो तुम्हारी रक्षा अवश्य करूँगा।

[**आर्य्यक प्रसन्नता प्रगट करता है।**]

चारुदत्त : वर्द्धमानक ! इनके पैर की बेड़ी दूर करो ।

चेट : जैसी आपकी आज्ञा (**बेड़ी काट कर**) आर्य्य ! यह लीजिये ।

आर्य्यक : किंतु तुमने मुझे प्रेम की और भी कठिन बेड़ी से जकड़ दिया ।

विदूषक : बेडी गई, ये भो बंधनमुक्त हुए । अब हम फिर घूमना शुरू करें प्रतीक्षा में !

चारुदत्त : चुप रहो । क्या कहते हो ?

आर्य्यक : सखे ! चारुदत्त ! मैं भी कौतुक से हो इस गाड़ी पर चढ़ गया था । इसके लिये क्षमा करेंगे !

चारुदत्त : आप इस पर प्रेम से चढ़ें । यह तो मेरा शृंगार बन गया ।

आर्य्यक : आपसे आज्ञा ले कर जाना चाहता हूँ ।

चारुदत्त : अवश्य ।

आर्य्यक : अच्छा उतरता हूँ ।

चारुदत्त : नहीं मित्र । उतरिये नहीं । अभी-अभी आपके पाँव से बेड़ी हटी है, आप इस कारण जल्दी नहीं चल सकेंगे । इस पथ पर राजपुरुष अधिक घूमते हैं, अतः आप यदि गाड़ी में रहेंगे तो कोई शंका भी न करेगा । आप गाड़ी पर चढ़े हुए ही जायें ।

आर्य्यक : जैसा आप कहें ।

चारुदत्त : अपने परिवार के पास सकुशल जाइये ।

आर्य्यक : मैं तो अपना परिवार आपमें ही पा गया ।

चारुदत्त : समय मिले तो मेरो भी याद करियेगा !

आर्य्यक : अपनी आत्मा को भी कोई भूलता है ?

चारुदत्त : मार्ग में जाते समय देवगण आपकी रक्षा करें !

आर्य्यक : मैं तो आपसे ही संरक्षित हो चुका हूँ ।

चारुदत्त : आप अपने भाग्य से रक्षित हुए हैं।

आर्य्यक : मित्र ! उस भाग्य में भी कारण तो आप ही हैं !

चारुदत्त : आपको राजा पालक पकड़ने में लगा है। अभी आपकी रक्षा संभव नहीं है। आप यहाँ से शीघ्र चले जायें।

आर्य्यक : अच्छी बात है। फिर आपके दर्शन हों, यही इच्छा है।

[प्रस्थान]

चारुदत्त : इस तरह राजा पालक का घोर अनर्थ करके यहाँ तनिक भी रुकना ठीक नहीं है। मैत्रेय ! इस बेड़ी को पुराने कुएँ में गिरा दो। कहीं अपने दूतरूपी आँख से राजा इसे देख न ले। (**बाईं आँख के फड़कने का स्पंदन अनुभव करके**) मैत्रेय ! मित्र ! मैं वसंतसेना को देखने को उत्सुक हो रहा हूँ। उसे बिना देखे मेरी दाईं आँख इस समय फड़क रही है। अकारण ही भयभीत हो कर इस समय मेरा हृदय पीड़ित हो रहा है। चलो। (घूम कर) क्यों ! सामने ही अमङ्गल स्वरूप इस मुण्डित बौद्ध भिक्षु का दर्शन हुआ ? (**सोच कर**) वह उधर से जा रहा है, हम इधर से जायें।

[प्रस्थान]

[आर्य्यक-अपहरण नामक सातवाँ अङ्क समाप्त]

आठवाँ अङ्क

[गीला चीवर[1] हाथ में लिये भिक्षु का प्रवेश]

भिक्षु : पुरुषो ! धर्म्म का उपार्जन करो ! पेट पर संयम रखो, ध्यान-रूपी नगाड़े की तरह सदा जागते रहो। इन्द्रियाँ भयानक चोर हैं। वे चिरसंचित धर्म्म को हर लेती हैं। धर्म्म के अतिरिक्त सब कुछ क्षणभंगुर है। इसीलिये मैं एकमात्र धर्म्म की शरण में आ गया हूँ। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ चोर हैं, उनका निग्रह करके, अविद्या का विनाश करके आत्मा की रक्षा करने वाला और अविद्या के विनाश से शिथिल हुए पापों का विध्वंस करने वाला मनुष्य अवश्य स्वर्ग में जाता है। जिसने सिर मुँडाया, दाढ़ी मुँडा ली, पर मन को नहीं मुँडाया, उसने कुछ भी नहीं मुँडाया। जिसका मन शुद्ध है, उसका तो सिर अपने आप साफ़ है। यह चीवर गंदे जल में भीग गया है। इसे राजा के साले के उद्यान में जा कर साफ तालाब में धो लूँ। जल्दी से लौट आऊँगा।

१. बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का चोग़ा-सा कपड़ा—रंग पीला-सा।

[जा कर तालाब में जल्दी-जल्दी धोता है। नेपथ्य से—ठहर रे दुष्ट श्रमण ! ठहर !]

भिक्षु : (देख कर भय से) आश्चर्य्य है। स्वयं राजा का साला संस्थानक आ पहुँचा। एक भिक्षु अपराध करे तो यह किसी भी भिक्षु को देख कर गाय की तरह नाक पर मार-मार कर निकाल बाहर करता है। अब मैं निस्सहाय किसकी शरण में जाऊँ ? अब तो बुद्धिमान राजा ही मेरी रक्षा करेंगे।

[तलवार लिये विट के साथ शकार का प्रवेश]

शकार : ठहर जा दुष्ट श्रमणक[1] ! ठहर ! मदिरालय में गये मद्यपी के रक्तमूलक की तरह मैं तेरे मश्तक को अभी तोड़ता हूँ। (मारता है।)

विट : हे काणेलीपुत्र ! वैरागी चीवरधारी भिक्षु को मारना ठीक नहीं। इससे लाभ भी क्या ? आप इस सुंदर उद्यान में मन बहलायें ! वे घर-बारों के लिये आश्रम बने इन सुंदर वृक्षों में जो कारीगरी काँट-छाँट की गई है, इसे देखें। यह दुर्जनों के मन के समान और नये राजा की तरह बिना शासन किये ही अच्छे फल देने वाला है।

भिक्षु : मैं आपकी वंदना करता हूँ। उपासक प्रसन्न हों।

शकार : विद्वन ! देखो-देखो ! गालो देता है !

विट : क्या कहता है ?

शकार : मुझे उपाशक कहता है। मैं क्या नाई हूँ ?

विट : बुद्ध के उपासक कह कर वह आपकी प्रशंसा करता है।

---

१. क प्रत्यय लगाने से इज्ज़त घटती है, जैसे पुत्र में क लगाने से पुत्रक—हरामज़ादा। भिक्षु में क लगाने से भिक्षुक—भिखारी। ऐसे ही श्रमण में क लगाने से श्रमणक—यानी ओछा साधू।

शकार : ऐ श्रमणक ! शुनो !

भिक्षु : तुम धन्य हो ! तुम पुण्यवान हो !

शकार : भाव ! यह मुझे धन्य पुण्य कहता है। क्या मैं श्रावक हूँ, जुआरी हूँ, या कुम्हार हूँ ?

विट : काणेलीपुत्र ! तुम धन्य हो। तुम पुण्यात्मा हो, यह कह कर वह तुम्हारी प्रशंसा करता है।

शकार : भाव ! तो यह यहाँ किशलिये आया है ?

भिक्षु : इस चीवर को धोने।

शकार : अरे दुष्ट श्रमण ! मेरी बहिन के पति राजा पालक ने शब उद्यानों में श्रेष्ठ पुष्पकरण्डक उद्यान मुझे दिया है जिशमें कुत्ते और शियार पानी पीते हैं। मैं प्रधान पुरुष होते हुए भी, मनुष्य होते हुए भी इश में श्नान नहीं करता। उश श्वच्छ पुष्कर जल में तुम पुराने कुलथी के चूर्ण शे रँगे इश गंदे चीवर को धोते हो ! मैं तुम्हें इशलिये एक बेंत मारने की आज्ञा देता हूँ।

विट : काणेलीपुत्र ! मुझे तो लगता है, यह अभी नया ही बौद्ध संन्यासी हुआ है।

शकार : आप कैशे जानते हैं ?

विट : इसमें जानने को क्या है ! केश मुँडाने पर भी आज भी इसके ललाट की चमक गृहस्थों की-सी उज्ज्वल है। बहुत थोड़े दिन हुए हैं तभी चीवर का निशान भी कंधे पर नहीं पड़ा है। न इसे वस्त्र रँगने का अभ्यास है, न धारण करने का। दूर तक गुप्त अंगों को ढँक कर रखता है। इसका उपरला वस्त्र भी शिथिल हो कर कंधे पर ठहर नहीं रहा है।

भिक्षु : उपासक ! यह सत्य है। मैं अभी हाल में ही प्रव्रजित[1] हुआ हूँ।

शकार : तो क्या तुम जन्म शे ही प्रव्रजित नहीं हुए हो ?

भिक्षु : बुद्ध को नमस्कार है।

[मारता है।]

विट : इस तपस्वी को मारने से क्या लाभ ? छोड़ो। जाने दो।

शकार : अरे ठहरो। मैं इशके जाने के बार में जरा तय कर लूँ।

विट : किसके साथ ?

शकार : अपने हृदय शे।

विट : हन्त ! अभी गया नहीं ?

शकार : पुत्रक ! हृदय ! राजन् ! पुत्रक ! क्या यह श्रमण चला जाये ? या ठहरे ? (स्वगत) न जाये, न ठहरे। (प्रगट) भाव ! मैं हृदय शे पूछ लिया। मेरा हृदय कहता है…

विट : क्या कहता है ?

शकार : न ये जाये, न ठहरे। न उच्छ्वाश ले, न शांश ले ! यह यहीं तुरंत गिर कर मर जाये।

भिक्षु : बुद्ध को नमस्कार ! मैं शरणागत हूँ। रक्षा करो।

विट : जाओ !

शकार : एक शर्त्त पर।

विट : क्या शर्त्त है ?

शकार : इश तरह कीचड़ फेंके कि पानी गंदा न हो, या पानी इकट्ठा करके कीचड़ में फेंके।

विट : हाय री मूर्खता ! उल्टी बुद्धि वाले, पत्थर के-से कठोर हृदय

---

१. परिव्रज्या—भिक्षुत्व ग्रहण करना।

वाले, माँस से लदे वृक्षों के कारण ही इस पृथ्वी पर इतना भार बढ़ गया है।

[भिक्षुक इशारे—अङ्ग-भङ्गी से गाली देता है।]

शकार : क्या कहता है ?

विट : आपको प्रशंसा करता है।

शकार : शुनो ! शुनो ! एक बार फिर शुनो !

[वैसा ही फिर करके भिक्षु का प्रस्थान]

विट : काणेलीपुत्र ! उपवन की शोभा देखो। राजाज्ञा से रक्षित, मालियों से रक्षित फल और फूलों से सुशोभित, वायु के न होने से शांत लताओं से आलिंगित ये वृक्ष कई पत्नियों वाले पुरुषों की भाँति सुख भोग कर रहे हैं।

शकार : आप शच कहते हैं। तरह-तरह के पुष्पों के गिरने शे पृथ्वी कैशी रंग-विरंगी हो गई है ? कुशुमों के भार शे वृक्ष विनम्र हो गये हैं। पेड़ों की फुनगियाँ लंबी-शी हो गई हैं और बन्दर कटहल के शमान लटक रहे हैं !

विट : काणेलीपुत्र ! इस प्रस्तर-खण्ड पर बैठो।

शकार : लो बैठ गया। (विट के साथ बैठता है।) भाव ! आज भी वशंतशेना की श्मृति आती है। जैशे दुष्ट वचन हृदय से नहीं निकलते वैशे ही वह भी नहीं निकलती।

विट : (स्वगत) इतना अपमान हो जाने पर भी उसे याद करता है ! सच है। स्त्रियों से अपमानित दुष्टों का काम और भी बढ़ जाता है। अवश्य ऐसे में सत्पुरुषों का काम घटता ही नहीं, लुप्त हो जाता है।

शकार : भाव ! श्थावरक चेट शे कहे कितनी देर हो गई कि बैलगाडी ले कर जल्दी आ जाना ; वह अभी तक नहीं आया।

मैं बड़ी देर शे भूखा हूँ। दोपहर तक तो पैरों शे चल भी नहीं शकूँगा। देखो न! शूर्य्य आकाश के बीच में पहुँच गया है। ऐशा है जैशा बन्दर गुश्शे में होता है कि देखा भी नहीं जा शकता। कितना तीव्र है! भूमि शौ पुत्रों की मृत्यु शे शतप्त गांधारी जैशी हो गई है।

विट : ठीक कहते हैं। गायें घास छोड़कर छाया में ऊँघ रही हैं। प्यास से आर्त्त वनपशु सरोवर का जल पी रहे हैं। मनुष्य धूप से डर कर नगरी के रास्ते पर भी नहीं चल रहे। मुझे लगता है, धूप के कारण गाड़ी कहीं छाया में रुकी खड़ी है।

शकार : भाव! शूर्य्य की किरणें मेरे मश्तक पर गिर रही हैं। चिड़ियाँ वृक्षों की शाखाओं में चुप बैठी हैं। लोग-बाग घरों में बैठ कर गर्म शांशें छोड़ते हुए गर्मी को दूर कर रहे हैं! भाव! चेट अभी तक नहीं आ रहा है। तो मन बहलाने को कुछ गाता हूँ। (**गाता है। गा कर**) भाव! भाव! जो मैंने गाया, शो शुना?

विट : क्या बात है!! आप तो गायक ही हैं!! गंधर्व ही हैं!

शकार : क्या मैं गधर्व नहीं हो शकता? हींग में शाफ़ करके मैंने जीरा पोथा, वच की गाँठ, गुड़ से मिली सोंठ, इन सबके मेल से बने गंधयोग का सेवन किया है। तो भला मेरे स्वर में मिठास क्यों नहीं आयेगी? भाव! मैं फिर गाता हूँ। (**गाता है। गा कर**) भाव! भाव! शुना तुमने! मैंने अभी जो गाया?

विट : क्या कहते हैं आप भी! वाह! भला गंधर्व ही जो ठहरे?

शकार : भला गंधर्व मैं क्यों नहीं हो शकता? मैंने हींग से शोधा हुआ मशालेदार, तेल और घी में बघारा हुआ कोयल का मांश खाया है। फिर मेरा श्वर मिठाश लिये हुए किशलिये नहीं

होगा ? पर भाव ! चेट तो अभी तक नहीं आया !

विट : आप स्वस्थ हों ! चेट अब आता ही होगा ।

[**गाड़ी पर चढ़ी वसंतसेना के साथ चेट का प्रवेश**]

चेट : मैं डरा हुआ हूँ । दोपहर का सूरज ! कहीं राजा का साला संस्थानक मुझ पर क्रुद्ध न हो जाय । अच्छा जल्दी हाँकूँ । बढ़े चलो बैलो, बढ़े चलो !

वसंतसेना : हाय-हाय ! यह तो वर्द्धमानक की आवाज़ नहीं मालूम पड़ी ! यह क्या बात है ? क्या वर्द्धमानक गाड़ी हाँक कर थक गया था जो आर्य्य चारुदत्त ने और कोई गाड़ी और दूसरा ही गाड़ीवान भेजा है ? मेरी दाईं आँख फड़क रही है । मेरा हृदय काँप रहा है । दिशाएँ सूनी हो रही हैं । हाय ! सब कुछ उल्टा क्यों दीख रहा है ?

शकार : (**गाड़ी की आवाज़ सुन कर**) भाव ! भाव ! गाड़ी आ गई !

विट : आपको कैसे पता चला ?

शकार : देखते नहीं हो ! बूढ़े शूहर की तरह का-शा घुर-घुर शब्द हो रहा है ।

विट : (**देख कर**) ठीक कहा । गाड़ी आ गई ।

शकार : पुत्रक[1] ! स्थावरक ! चेट ! तुम आ गये !

चेट : जी हाँ ।

शकार : गाड़ी भी आ गई ?

चेट : नहीं तो क्या ?

शकार : बैल भी आ गये ?

चेट : अरे हाँ नहीं तो ?

शकार : तुम भी आ गये ?

---

१. पुत्रक—अपमानजनक संबोधन ।

चेट : (हँस कर) हाँ स्वामी । मैं भी आ गया ।

शकार : तब गाड़ी ले आओ ।

चेट : किधर से ?

शकार : इधर, इश चहार दीवारी पर शे ही ।

चेट : स्वामी ! बैल मर जायेंगे, गाड़ी टूट जायेगी और मैं भी चल बसूँगा ।

शकार : अरे मैं राजा का शाला हूँ । बैल मर जायेंगे दूशरे ले लूँगा, गाड़ी टूट जायेगी और ले लूँगा, तुम मर जाओगे, तो और गाड़ीवान रख लूँगा ।

चेट : सब कुछ मिल जायेगा, पर मुझ जैसा अपना आदमी कहाँ मिलेगा ?

शकार : शब कुछ विनश्ट हो जाने दो । तुम इशी टीले पर शे चलो ।

चेट : बिल्कुल टूट-फूट जारी गाड़ी ! स्वामी के साथ यह गाड़ी टूट जाये ! दूसरी बन जायेगी । मैं स्वामी से निवेदन करता हूँ । (प्रवेश कर) अरे गाड़ी क्यों नहीं टूटी ? स्वामी ! गाड़ी तो आ गई ।

शकार : बैल नहीं टूटे ? रश्शियाँ नहीं मरीं ? तुम भी नहीं मरे !

चेट : हाँ सब बच गये ।

शकार : भाव ! आयें ! गाड़ी देखें ! भाव ! तुम मेरे गुरु हो, परमगुरु कहे जाते हो ! तुम आदरणीय हो, अंतरंग हो, माननीय हो, अतः तुम्हीं इश गाड़ी पर पहले चढ़ो ।

विट : यही सही । (गाड़ी पर चढ़ता है ।)

शकार : ऐ ठहरो ! गाड़ी क्या तुम्हारे बाप की है जो मुझ शे पहले तुम

गाड़ी पर चढ़ते हो ? मैं गाड़ी का मालिक हूँ । मैं इश पर पहले चढ़ूँगा ।

विट : आपने ही तो कहा था ।

शकार : मैंने ही कहा था कि आप पहले चढ़ें, तब भी आपको कहना चाहिए था कि 'श्वामी ! पहले आप चढ़ें ।'

विट : चढ़िये ! आप ही चढ़िये ।

शकार : अच्छा मैं ही चढ़ता हूँ । पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! गाड़ी घुमाओ ।

चेट : (**घुमा कर**) मालिक ! चढ़िये ।

शकार । (**चढ़ कर देख कर, भयभीत-सा उतर कर विट के कंधे से लग कर**) भाव ! भाव ! मर गया ! मर गये ! गाड़ी में राक्षशी है या चोर है । अगर राक्षशी है तो हम दोनों को लूट लेगी और चोर है तो हम दोनों को खा जायेगा ।

विट : डरो मत ! बैलगाड़ी पर राक्षसी कैसे आ सकती है ? दुपहर की धूप से तुम्हारी आँखें चौंधिया गई हैं, तभी कपड़े पहने स्थावरक को देख कर तुम्हें भ्रम हो गया है ।

शकार : पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! क्या तुम जीवित हो ?

चेट : क्यों नहीं ?

शकार : भाव ! गाड़ी में तो एक श्त्री बैठी है । आप देखिये ।

विट : स्त्री ! मार्ग में वर्षा के जल से ताड़ित आँख वाले बैल की तरह मैं सिर नीचा करके जल्दी चलता हूँ । मैं भले आदमियों में ससम्मान रहना चाहता हूँ । मेरी आँखें कुलस्त्रियों को देखने में नीचे झुक जाती हैं । मैं देखने में असमर्थ हूँ ।

वसंतसेना : (**विस्मय से स्वगत**) राजा का साला ! मेरी आँखों का काँटा मिल गया ! मैं कितनी अभागिनी हूँ ! इस समय तो मैं

ऊसर भूमि में डाले गये मुट्ठी भर बीजों-सी हो गई हूँ। क्या करूँ ?

शकार : यह भयभीत बूढ़ा चेट गाड़ी भी नहीं देखता। भाव ! यह गाड़ी देखो !

विट : इसमें क्या दोष है। लो देखता हूँ।

शकार : क्यों ? शियार उड़ रहे हैं ! कौए भाग रहे हैं ? इशशे पहले कि यह मुझे आँखों शे खाये, और दाँतों शे देखें, मैं भाग जाता हूँ।

विट : (**वसंतसेना को देख कर दुख से स्वगत**) अरे ! यह हिरनी इस बाघ का पीछा क्यों कर रही है ? हाय रे कष्ट ! नदी की रेत पर शरद् काल के चंद्रमा के समान उज्ज्वल हँस को छोड़ कर यह हंसिनि कौए के पास आ गई है ? (**धीरे से**) वसंतसेने ! यह ठीक नहीं है, यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। पहले मानपूर्वक तुमने शकार को अनादृत किया, फिर धन के लोभ से माता के कहने पर······

वसंतसेना : न ! (**सिर हिलाती है।**)

विट : वेश्याभाव के कारण अनुदार स्वभाव से शकार के पास आई हो ? मैं तो तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि तुम रसिक और अरसिक नायक से समान व्यवहार करो।

वसंतसेना : गाड़ी के अदल-बदल जाने से मैं यहाँ आ पहुँची हूँ। मैं आपकी शरणागत हूँ। मेरी रक्षा करिये।

विट : डरो मत ! मत डरो। मैं शकार को धोखा देता हूँ (**शकार के पास जा कर**) काणेलीपुत्र ! इस पर तो सचमुच राक्षसी बैठी है।

शकार : भाव ! भाव ! यदि राक्षशी है तो उशने आपको लूटा

क्यों नहीं ? चोर है तो उशने आपको खा क्यों नहीं लिया ?

विट : ऐसे अनुमान लड़ाने से लाभ क्या है ? यदि उद्यान ही उद्यान चल कर हम उज्जयिनी पहुँच जायें तो हानि ही क्या है ?

शकार : ऐशा करने शे क्या होगा ?

विट : हमारा व्यायाम हो जायेगा और गाड़ीवान और बैलों की थकावट दूर हो जायेगी ।

शकार : ऐशा ही करिये । श्थावरक ! चेट ! गाड़ी ले चलो । नहीं । ठहरो ! ठहरो ! देवगण और ब्राह्मणों के आगे मैं पैदल चलूँ ? नहीं । नहीं-नहीं, मैं गाड़ी पर ही चलूँगा । तभी तो लोग मुझे दूर शे ही देख कर कहेंगे कि राजश्यालक भट्टारक* आ रहे हैं ।

विट : (स्वगत) विष को औषधि बनाना अत्यन्त कठिन है । अच्छी बात है । (प्रगट) काणेलीपुत्र ! यह वसंतसेना आपसे रमण करने को गुप्त रूप से आई है ।

वसंतसेना : पाप शान्त हो ! पाप शान्त हो !

शकार : (प्रसन्नता से) भाव ! भाव ! मैं प्रधान पुरुष ! मैं मनुष्य वाशुदेव ! मेरे पाश ?

विट : हाँ आप ही के पास ।

शकार : अपूर्व लक्ष्मी मिल गई । मैंने उश शमय इशे गुश्शा कर दिया था, शो इश शमय मैं इशके चरणों पर गिर कर इशे प्रशन्न करता हूँ ।

विट : बिल्कुल ठीक ।

शकार : चरणों पर गिरता हूँ । (वसंतसेना के पास जा कर) हे माता !

*उच्च पद, अर्थात् प्रभु ।

अम्बिके ! मेरी प्रार्थना शुनो ! हे विशाल लोचने ! मैं तुम्हारे चरणों पर गिरता हूँ। हे हाथों में दश नख वाली ! हे शुद्ध दाँत वाली ! मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ। शुन्दर शरीर वाली ! कामातुर हो कर मैंने पहले जो तुम्हारा अपमान किया था, मैं उशकी अब क्षमा माँग रहा हूँ। मैं तुम्हारा शेवक हूँ।

वसंतसेना : (**क्रोध से**) दूर हटो ! तुम अनार्य्य शब्द कहते हो।

[**ठोकर मारती है।**]

शकार : (**क्रोध से**) जिश मश्तक का अम्बिका ने प्रेम शे चुंबन किया, जो कभी देवताओं के शामने भी नहीं झुका, उशी को तुमने लात दे कर अपमानित किया जैशे वन में शियार किशी लोथ को पैरों शे गिराता है ! अरे श्थावरक ! चेट ! तू इश वशंतशेना को कहाँ शे लाया ?

चेट : स्वामी ! गाँव की गाड़ियों से रास्ता रुका हुआ था। उस समय मैंने अपनी गाड़ी चारुदत्त के उद्यान में खड़ी की और उतर कर जब तक पहिया घुमाया, यह इसे और ही गाड़ी समझ कर इस पर चढ़ गई, ऐसा अनुमान लगाता हूँ।

शकार : क्या यह गाड़ी बदल जाने शे आई है ? मुझशे भोग करने नहीं आई ? तब मेरी गाड़ी शे उतर ! जल्दी उतर ! तू उश दरिद्र व्यापारी चारुदत्त शे रमण करने जा रही है ! और मेरे बैलों पर बोझ दे रही है ? उतर ! जल्दी उतर गधी ! उतर ! तुरंत उतर !

वसंतसेना : मैं उनके पास जाती हूँ कह कर तुमने मुझे कितना उठा दिया ! अब कुछ भी हो, मुझे कोई चिंता नहीं है।

शकार : तेरे दश नख कमल जैसे हैं। तू प्रिय वाक्यों की भाँति इन हाथों शे चोट करने की लोभिन है। शुन्दरी ! आ ! तेरे

केश पकड़ कर मैं तुझे गाड़ी शे ऐशे ही नीचे खींचता हूँ जैशे वालि की श्त्री तारा को जटायु ने खींचा था।

विट : गुणवती स्त्रियों के केश पकड़ कर नहीं खींचना चाहिये, न उद्यान की लताओं की कोंपल ही तोड़नी चाहिये। आप हटिये, मैं वसंतसेना को उतारता हूँ। वसंतसेने ! उतरो !

[वसंतसेना उतर कर एक ओर खड़ी हो जाती है।]

शकार : **(स्वगत)** उश दिन जो मेरे अपमान शे क्रोध की आग शुलग उठी थी, वही अब लात खा कर भड़क उठी है। इश वशंतशेना को मैं मारूँगा। अच्छा ठीक है। **(प्रगट)** भाव ! भाव ! यदि लंबे तागों शे बुना उत्तरीय चाहते हो, यदि चुहू-चुहू कर मांश खाना चाहते हो और मुझे प्रशन्न करना चाहते हो तो……

विट : तो क्या करना होगा ?

शकार : मेरा प्रिय करो।

विट : अकार्य्य को छोड़ कर, सब करूँगा।

शकार : भाव ! अकार्य्य की तो गंध भी नहीं मिलेगी। वह कोई राक्षशी नहीं है……

विट : तो बताओ।

शकार : वशंतशेना को मारो।

विट **(कान बंद करके)** यदि मैं बाला, स्त्री, उज्जयिनी-विभूषण, और गणिका-प्रतिकूल कुल-कामिनी जैसी इस प्रेमवती निरपराध वसंतसेना को मारूँगा तो परलोक रूपी नदी को कैसे पार करूँगा !

शकार : मैं तुम्हें नाव दूँगा। फिर यह भी तो शोचो कि इश

एकांत उपवन में यदि तुम इशे मारोगे तो तुम्हें देखेगा भी कौन ?

विट : पाप-पुण्य की साक्षी दसों दिशाएँ तो देखती हैं। वनदेवता, चंद्रमा, तीव्र किरणों वाला सूर्य्य, धर्म, वायु, आकाश, अंतरात्मा और यह भूमि तो मुझे देख रही है।

शकार : तो कपड़ा बीच में टाँग कर पर्दा बना कर मारो।

विट : मूर्ख ! तुम्हारा बहुत पतन हो गया है।

शकार : यह बुड्ढा शूअर अधर्म शे डरता है। अच्छा, मैं श्थावरक चेट शे कहता हूँ। पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! मैं तुम्हें शुवर्ण का कंकण दूँगा।

चेट : मैं पहन लूँगा।

शकार : मैं तुम्हें शोने का पीढा बनवा दूँगा।

चेट : मैं उस पर बैठ जाऊँगा।

शकार : मैं तुम्हें शब बचा हुआ भोजन दे दूँगा।

चेट : मैं खा जाऊँगा।

शकार : मैं तुम्हें शारे चेटों का प्रधान बना दूँगा।

चेट : स्वामी ! मैं बन जाऊँगा।

शकार : तो मेरी बात मान लो।

चेट : स्वामी ! मैं अकाज को छोड़ कर सब करूँगा।

शकार : अकाज की तो गंध भी नहीं।

चेट : तो कहें स्वामी।

शकार : इश वशंतशेना को मारो।

चेट : प्रशन्न हों स्वामी ! मैं नीच इस वसंतसेना को गाड़ी बदल जाने से ले आया हूँ।

शकार : अरे चेट ! मैं तुम शे भी यह कार्य्य नहीं करा शकता ?

चेट : स्वामी मेरे शरीर पर समर्थ हैं, चरित्र पर नहीं। प्रसन्न हों स्वामी, प्रसन्न हों। मैं डरता हूँ।

शकार : तुम चेट हो कर किश शे डरते हो ?

चेट : स्वामी ! परलोक से।

शकार : क्या है वह परलोक ?

चेट : भट्टारक ! पाप और पुण्य का परिणाम।

शकार : पुण्य का परिणाम क्या है ?

चेट : जैसे आप तरह-तरह के गहने पहने हैं !

शकार : पाप का नतीजा कैशा है ?

चेट : जैसा मैं हूँ, पराये अन्न पर पलने वाला। इसलिये मैं बुरा काम नहीं करूँगा।

शकार : तो, नहीं मारेगा ?

चेट: मुझे मारिये स्वामी ! पर मैं बुरा काम नहीं करूँगा। पूर्व जन्म के पापों के फल से तो जन्म से घृणित दास बना हूँ। अब वसंतसेना को मार कर और पाप नहीं कमाऊँगा। मैं बुरा काम नहीं कर सकता।

वसंतसेना : भाव ! मैं तुम्हारी शरणागत हूँ।

विट : काणेलीपुत्र ! क्षमा कर दो। क्षमा स्थावरक ! तुम धन्य हो ! सबसे अपमानित होने वाला दास भी परलोक के फल की इच्छा करता है, किंतु इसका स्वामी नहीं करता। जो सुकार्य्य न करके बुरे काम करते हैं, वे शीघ्र ही नष्ट क्यों नहीं हो जाते ? विधाता उल्टा ही करता है, और छिद्रान्वेषी भी है। धार्मिक दास है, और पापी स्वामी ! यह तुम्हारे धन का उपभोग नहीं करता, और तुम इसकी आज्ञा नहीं मानते !

शकार : (**स्वगत**) यह बुड्ढा शूअर विट अधर्म शे डरता है। और

जन्म शे ही श्थावरक परलोक शे डरता है। किंतु प्रधान पुरुष मैं राजा का शाला हूँ ! मै किशशे भयभीत होऊँ ? (**प्रगट**) अरे ! नीच दाश ? चेट ! तुम जाओ ! किशी छिपने लायक निकुञ्ज में एकांत में चुपचाप ठहरो।

चेट : जैसी प्रभु की आज्ञा ! (**वसंतसेना के पास जा कर**) आर्य्ये ! मुझमें इतनी ही सामर्थ्य है।

शकार : (**कमर में वस्त्र लपेटते हुए**) ठहर वशंतशेने ! मैं मारूँगा तुझे ! ठहर जा !

विट : (**गला पकड़ कर**) मेरे सामने मारोगे ?

शकार : (**पृथ्वी पर गिर पड़ता है।**) भाव ! श्वामी को मारते हो ? (**मूर्च्छित-सा हो जाता है। फिर होश में आ कर**) हर शमय मैंने तुम्हें मांश और घी खिला कर पाला, पुष्ट किया। आज काम आ जाने पर तुम हमारे शत्रु क्यों हो गये ? (**सोच कर**) अच्छा। मैंने उपाय शोच लिया। शिर हिला कर वृद्ध शियार ने शंकेत दे दिया। तब इशे पीश कर ही वशंतशेना को मारूँगा। यही ठीक है। (**प्रगट**) भाव ! जो तुमने मुझशे कहा कि उच्च गल्लर्क[1] कुल में जन्म ले कर कैशे वशंतशेना को मारूँ, तो इशे मारने को तो तुमने ही मुझशे कहा है।

विट : उच्चता के लिये अच्छे वंश में पैदा होना ही काफ़ी नहीं है। उसका कारण तो स्वभाव है। बबूल आदि निम्न कोटि के वृक्ष अच्छी भूमि पर पैदा हो कर भी खूब बढ़ते-फैलते हैं।

शकार : भाव ! वशंतशेना तुम्हारे शामने लज्जित होती है, मुझे श्वीकार नहीं करती। तुम जाओ ! श्थावरक चेट मुझशे डर

---

१. गल्लर्क—कुत्ता।

कर भागा जाता है। उशे पकड़ कर लाओ। जाओ भाव।

विट : (**स्वगत**) उदारता के कारण वसंतसेना इस मूर्ख को हमारे सामने स्वीकार नहीं करती। मैं तनिक एकांत करूँ। निर्जन में ही विश्वासपूर्ण होने पर दोनों में काम का संचार होगा। (**प्रगट**) अच्छी बात है।

वसंतसेना : (**आँचल फैला कर**) मैं शरणागत हूँ।

विट : डरो मत वसंतसेना, डरो मत ! काणेलीपुत्र शकार ! वसन्त-सेना तुम्हारे हाथ एक धरोहर है । समझे ?

शकार : अच्छा। यह मेरे पाश धरोहर के रूप में रहे।

विट : सच ?

शकार : शच।

विट : (**कुछ दूर जा कर**) मेरे जाने पर यह पापी इसे मार डालेगा। छिप कर इसके काम देखूँ। (**निर्जन में छिप जाता है।**)

शकार : अच्छा, मारूँगा। लेकिन कहीं छल शे यह धूर्त्त ब्राह्मण बुड्ढा शियार छिप कर न देख रहा हो ! तो मैं भी धूर्त्तता करता हूँ। (**फूल चुन कर अपने अंग सजाता है।**) बाले ! बाले ! वशंतशेने ! आओ !

विट : अरे कामी है ! अहा ! मैं निवृत हुआ। निश्चिन्त हुआ। अब चलूँ।

[**प्रस्थान**]

शकार : शोने के गहने दूँगा, प्रिय वाणी बोलता हूँ, पगड़ी शहित तुम्हारे चरणों पर झुकता हूँ। फिर भी हे शुन्दर दंतपंक्ति वाली ! तुम मुझे नहीं चाहतीं ! क्या शेवकों के प्रति श्वामी का यही कष्ट-भरा व्यवहार ठीक है ?

वसंतसेना : इसमें क्या संदेह है ! (**सिर नीचा कर**) हे नीच ! तुम तो

अपने व्यवहार से अधम हो! तुम मूर्ख हो। क्या मुझे धन से जीतना चाहते हो! सुंदर चरित्र और निर्मल रूप वाले कमल को छोड़ कर क्या भौंरे कहीं और जाते हैं? अच्छे कुल वाले सदाचारी पुरुष गरीब भी हों तो भी यत्नपूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए। वेश्या के लिये तो प्रणय तभी ठीक है जब समान गुण पुरुष मिले। मैं आम्रवृक्ष की सेवा करके क्या पलाश को पसंद कर सकती हूँ?

शकार : दाशीपुत्री! तू निर्धन चारुदत्त को आम का पेड़ और मुझे पलाश कहती है? किंशुक भी नहीं कहा मुझे? मुझे गाली दे कर तू आज भी उशी की याद करती है?

वसंतसेना : जो हृदय में बैठा हो, क्या उसी की याद नहीं की जाती?

शकार : तेरे मन में बैठे चारुदत्त और तुझको एक शाथ ही पीश कर चूरन बनाता हूँ। दरिद्र चारुदत्त को चाहती है? ठहर! ठहर तो सही!

वसंतसेना : कहो! कहो! फिर कहो! ये अक्षर ही पूजनीय हैं!

शकार : नीचपुत्र दरिद्र चारुदत्त तेरी रक्षा करे।

वसंतसेना : यदि मुझे देखेंगे तो अवश्य बचायेंगे!

शकार : क्या वह चारुदत्त इन्द्र है, या बालि का पुत्र महेन्द्र है? या रम्भा का पुत्र कालनेमि है? शुबन्धु है या राजारूद्र है? द्रोण का पुत्र जटायु है या चाणक्य? धुन्धुमार है कि त्रिशंकु? ये शब भी तेरी रक्षा नहीं कर शकते। जिश तरह भारत-युग में चाणक्य ने शीता को मारा था, और जटायु ने द्रौपदी को मारा था, वैशे ही मैं भी तुझे मारूँगा।

वसंतसेना : हा माता! तुम कहाँ हो! हा आर्य्य चारुदत्त! यहाँ मैं

अधूरे मनोरथ लिये मरती हूँ। मैं चिल्ला कर रोऊँ। पर यह तो मेरे लिये लज्जा का विषय होगा। आर्य्य चारुदत्त को नमस्कार।

शकार : अब भी यह गर्भदाशी उशी पापी का नाम ले रही है? (**गला दबाते हुए**) श्मरण कर उशका गर्भदाशी ! श्मरण कर !

वसंतसेना : आर्य्य चारुदत्त को नमस्कार है......

शकार : मर जा गर्भदाशी। मर ! (**गला घोंट कर मार डालता है। वसंतसेना मूर्च्छित और निश्चेष्ट हो कर गिर जाती है।**)

शकार : (**प्रसन्नता से**) पापों की खान, दुर्व्यवहार की निवाश-भूमि, जीर्णोद्यान में आये चारुदत्त शे रमण करने आई इश अनुरागिणी वशंतशेना को समय के फेर शे पा कर मैं जान शे मार कर क्या अपनी भुजाओं को दिखाऊँ? यह तो मेरे श्वास लेने मात्र शे उशी प्रकार मर जायेगी जैशे भारत-युग में शीता मरी थी। मैं इतना प्रेम करता हूँ फिर भी यह मुझे नहीं चाहती? मेरी भुजाओं ने इशे भयभीत किया, शूना पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में यह डराई गई। वह मेरा भाई, मेरा पिता, और द्रौपदी-शी मेरी माता वंचित ही रह गई जिशने अपने पुत्र की ऐशी वीरता नहीं देखी ! अच्छा, अब वह वृद्ध शृगाल विट आयेगा। दूर हट कर बैठ जाऊँ। (**दूर हट जाता है।**)

विट : (**चेट के साथ आ कर**) स्थावरक चेट को मैं समझा कर ले आया हूँ। काणेलीपुत्र शकार को देखूँ। (**घूम कर और देख कर**) अरे रास्ते में पैरों पर पड़ी है ! इस अधम ने तो इस स्त्री को मार डाला ! ओ पापी ! तूने यह नीच कार्य्य क्यों किया? तुझ पापी के इस अधःपतन और स्त्री-वध देखने से हम भी पतित हो गये ! सचमुच ! अकारण ही इस वसंतसेना के प्रति

मेरा मन शंका से भर गया था। देवगण हर प्रकार से कल्याण करेंगे। (**शकार के पास जा कर**) काणेलीपुत्र ! मैं स्थावरक चेट को समझा कर ले आया हूँ।

शकार : भाव ! तुम्हारा श्वागत करता है। पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! तुम्हारा भी श्वागत है।

चेट : अच्छा।

विट : मेरी धरोहर लाओ।

शकार : कैशी ?

विट : वसंतसेना।

शकार : वह तो गई।

विट : कहाँ ?

शकार : आपके पीछे-पीछे !

विट : (**सोच कर**) उधर तो वह नहीं गई।

शकार : तुम किधर गये थे ?

विट : पूर्व की ओर।

शकार : तो वह दक्षिण की ओर गई है।

विट : मैं तो दक्षिण की ओर गया था।

शकार : तो वह उत्तर की ओर गई है।

विट : घबरा कर क्या कह रहे हैं ? आपकी अंतरात्मा अशुद्ध हो रही है। इसलिये सच-सच कहिये।

शकार : तुम्हारे माथे को अपने पाँवों शे छू कर कशम खा कर कहता हूँ, हृदय को थाम कर शुनो—मैंने वशंतशेना को मार डाला।

विट : (**दुख सहित**) सचमुच मार डाला ?

शकार : यदि मेरी बात पर विश्वाश नहीं करते तो पहले राजा के

शाले शंस्थानक की वीरता देखो !

[पड़ी हुई वसंतसेना को दिखाता है।]

विट : हाय ! मैं अभागा तो मर गया।

[मूर्च्छित हो कर गिरता है।]

शकार : अरे भाव तो मर गया !

चेट : भाव ! धैर्य्य धारण करिये ! धैर्य्य रखिये ! बिना सोचे उसे गाड़ी पर ला कर पहले तो मैंने ही उसे मार डाला।

विट : (**धैर्य्य धारण करके, करुणा-भरे स्वर से**) हा वसंतसेने ! दाक्षिण्य की नदी लुप्त हो गई। रति स्वदेश को लौट गई। हाय ! अलंकारों की शोभा ! ओ रे सुंदर मुखवाली ! लीला-विलास के रस को जगाने वाली ! सौजन्य की नदी ! हासपुलिने ! आज कामदेव की हाट लुट गई ! (**रोता हुआ**) दारुण कष्ट है, दारुण वेदना है। ऐसा काम करने से तुम्हारा क्या लाभ हुआ ? पापी ! तुमने निर्दोष उज्जयिनी की लक्ष्मी को मार डाला ! (**स्वगत**) अरे ! कहीं यह पापी इस नीच कार्य्य को मुझ पर न रख दे। तो मैं यहां से चलूँ।

[**शकार आ कर विट को पकड़ता है।**]

विट : पापी ! मुझे मत छू ! तेरा प्रयत्न बेकार है। मैं जाता हूँ।

शकार : अरे ! श्वयं ही वशंतशेना को मार कर मुझ पर कलंक लगा कर तू कहाँ भागा जाता है। इश शमय मैं ऐशा अनाथ हो गया !

विट : तू अधःपतित है।

शकार : शौ के बराबर धन दूँगा। शुवर्ण मुद्रा दूँगा। बीश कौड़ी शहित कार्षापण[1] दूँगा। वशंतशेना को मारने का मेरा दोष

१. एक सिक्का।

किशी अन्य शाधारण मनुश्य पर लगा दो

विट : तुम्हें धिक्कार है। यह तुम पर ही रहेगा।

चेट : पाप शान्त हो।

[शकार हँसता है।]

विट : बेकार हँसी छोड़ो। मेरी तुमसे अब प्रीति नहीं निभेगी। ऐसी मित्रता को धिक्कार है, जिससे अपमान एवं दुर्जनता की दुर्गन्ध आती है। तुमसे हमारा मिलन कभी न हो। बिना डोरी के टूटे धनुष की भाँति तुम्हें मैं छोड़ कर जाता हूँ।

शकार : भाव ! प्रशन्न हो ! प्रशन्न हो ! आओ ! इश कमल वाले शरोवर में प्रवेश करके क्रीड़ा करें।

विट : तुम्हारे साथ रहने पर लोक ही नहीं, स्वयं मैं भी ऐसी हालत में अपने को पापी समझूँगा। स्त्री मारने वाले तुझे जब नगर की स्त्रियाँ कनखियों से देखेंगी तब मैं क्या प्रसन्न हो कर तेरा स्वागत करूँगा? (करुणा सहित) वसंतसेना ! सुंदरी ! अगले जन्म में भी तू वेश्या न होना। चरित्र-गुणों से युक्त वसंतसेना ! तुम किसी निर्मल कुल में जन्म लेना।

शकार : मेरे पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में तुमने वशंतशेना को मारा है, अब कहाँ भागे जाते हो ? आओ। मेरी बहिन के पति राजा पालक के शामने अपने दोष का उत्तर दो।

[पकड़ता है।]

विट : (तलवार खींच कर) अरे ठहर नीच !

शकार : (डर से हट कर) अरे तुम तो डर गये ? तो जाओ।

विट : (स्वगत) अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं ? अच्छा, जहाँ आर्य्य शर्विलक, चंदनक आदि गये हैं, वहीं मैं भी जाऊँ।

[प्रस्थान]

शकार : मर जाओ ! अरे श्थावरक ! पुत्रक ! मैंने कैशा काम किया ?

चेट : स्वामी ! बहुत बुरा किया ।

शकार : अरे चेट ! क्या कहता है, मैंने बुरा काम किया ? अच्छा, हो शकता है । (**अपने अनेक गहने उतार कर**) ले यह आभूषण । मैंने तुझे दिये । जब तक मैं तुझे शजाऊँ तब तक तू मेरे लिये कोई और ही बन जा ।

चेट : ये आभूषण तो आपही के शरीर में अच्छे लगते हैं । मैं इनका क्या करूँगा ?

शकार : तब जा ! इन बैलों को ले कर मेरे महल की नयी बनी वीथि में चल कर ठहर ! तब तक मैं भी आता हूँ ।

चेट : जैसी प्रभु की आज्ञा ।

[**प्रस्थान**]

शकार : आत्मरक्षा के लिये विट तो भाग गया । चेट को भी महल की नयी वीथि में बेड़ी डाल कर रख दूँगा । यों रहश्य गुप्त रह जायेगा । तब चलूँ । इशे तो देख लूँ । मर भी गई या नहीं ? या फिर मारूँ ? यह तो पूरी तरह शे मर गई है । अच्छा इशे वश्त्र शे ढँक दूँ । पर इश वश्त्र पर तो नाम लिखा है, कोई आर्य्य पुरुष पहँचान जायेगा । अच्छा ! वायु शे इकट्ठे हुए इन शूखे पत्तों शे ढँक दूँ । (**पत्तों से ढँक कर, सोच कर**) यही ठीक है । अब न्यायाधीश के पाश जा कर अभियोग लिखवा दूँ कि धन के लोभ शे आर्य्य चारुदत्त ने मेरे पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में वशंतशेना को ले जा कर मार डाला । निर्मल नगरी में चारुदत्त के विनाश के लिये दारुण पशुहत्या की भाँति मैं यह नया छल करता हूँ । अब चलना चाहिये । (**चल कर और भय से देख कर**) अरे भयानक ! जिश-जिश राश्ते

शे जाता हूँ यह दुश्ट भिक्षु भी चीवर लिये उधर शे ही आता है। मैंने इशकी नाक छेद कर इशको निकलवाया है, इशलिये यह मेरा शत्रु कहीं यह न कह दे कि इशी ने मारा है। तब किधर जाऊँ ? (देख कर) अच्छा। इश अधगिरी चहारदीवारी को लाँघ के निकल जाऊँ ! जिश प्रकार लंका नगरी को जाते शमय शीघ्रता में हनुमान आकाश, पाताल, पृथ्वी और महेन्द्र पर्वत के शिखर पर चढ़ कर गया था, उशी प्रकार मैं भी इश चहार-दीवारी पर चढ़ कर जाता हूँ।

संवाहक भिक्षु : (**बिना पर्दा गिरे प्रवेश करके**) मैंने चीवर धो लिया। क्या इसे वृक्ष की शाखा पर सुखाऊँ ? पर वहाँ बन्दर इसे फाड़ डालेंगे। तो क्या धरती पर सुखाऊँ ? यहाँ धूलि लग जायेगी। तब फैला कर कहाँ सुखाऊँ ? (**देख कर**) ठीक है। यहाँ हवा के झोंकों से सूखे पत्तों का ढेर इकट्ठा हो गया है, इस पर फैला दूँ। (**फैला कर**) बुद्ध को प्रणाम है। (**बैठता है।**) धार्मिक अक्षरों को दुहरा लूँ। जिसने पाँचों इन्द्रियों का दमन कर लिया है वही श्रेष्ठ है। पर मुझे स्वर्ग से क्या लाभ ? जब तक मैं उस बुद्धोपासिका के उपकार को नहीं चुका देता, जिसने दस सुवर्ण दे कर मुझे जुआरियों से छुड़ाया था। मैं तो समझता हूँ, उसने मुझे तभी से खरीद लिया। (**देख कर**) पत्तों में से कौन साँस ले रहा है ? नहीं। वायु और सूखे पत्ते चीवर के पानी से भींग गये हैं, तभी फैल रहे हैं, जैसे पक्षी फुदक रहे हों।

[**होश में आ कर वसंतसेना हाथ हिलाती है। निकलता है।**]

भिक्षु : अरे ! रे ! सुंदर गहने पहने स्त्री का हाथ निकलता है ? ऐं ! वह दूसरा भी निकला ! (**सोच कर**) मैं इस हाथ को पहँचानता-सा हूँ। अरे सच ! यह वही हाथ है जिसने मुझे

जुआरियों से अभय-दान दिया था। अच्छा, देखूँ। (अभिनयपूर्वक पत्ते हटा कर देख कर, पहँचान कर) वही बुद्धोपासिका है।

[वसंतसेना पानी के लिये इशारा करती है।]

भिक्षु : जल माँगती है। बावड़ी तो दूर है। अब यहाँ मैं क्या करूँ? अच्छा, इस चीवर को इस पर निचोड़ दूँ। (निचोड़ता है।)

[वसंतसेना चैतन्य हो कर उठती है। भिक्षु वस्त्र से हवा करता हैं।]

वसंतसेना : आर्य्य ! आप कौन हैं ?

भिक्षु : बुद्धोपासिका ! क्या तुम मुझे नहीं पहँचानती ? मुझे तुमने दस सुवर्ण में खरीदा है।

वसंतसेना : याद आता है। पर जैसे आप कहते हैं, वैसे नहीं। उपहास करना व्यर्थ है।

भिक्षु : बुद्धोपासिके ! यह सच नहीं है ?

वसंतसेना : (दुख से) वेश्याओं के योग्य ही तो है।

भिक्षु : इस वृक्ष के पास की लता के सहारे बैठो बुद्धोपासिके ! उठो ! उठो ! (लता को झुकाता है। वसंतसेना लता पकड़ कर उठती है।]

भिक्षु : इस विहार में मेरी धर्म बहिन रहती है। धैर्य्य धारण करके उस उपासिका के घर चलो। धीरे-धीरे चलो बुद्धोपासिके ! (घूमता है, फिर देख कर) शीघ्र चलो आर्य्ये ! शीघ्र चलो ! तुम युवती स्त्री हो, और यह भिक्षु शुद्ध है, मेरा धर्म्म ही यह है। जो किसी की वस्तु नहीं लेता, झूँठ और बुरे वचन नहीं कहता, जो इन्द्रियों को वश में किये है, उस शुद्ध-पवित्र मनुष्य का राजकुल कर ही क्या सकता है ? उसके हाथ में तो परलोक भी स्थिर ही है।

[प्रस्थान]

[वसंतसेना मोटन (अर्थात् गला घोंटना) नामक आठवाँ अङ्क समाप्त]

नवाँ अङ्क

[शोधनक प्रवेश करता है।]

शोधनक : मुझे न्यायालय के कार्य्यकर्त्ताओं ने आज्ञा दी है कि मैं न्याय-मण्डप में जा कर आसनों को सुसज्जित करूँ। तो चलूँ। (घूम और देख कर) यही न्याय-मण्डप है। इसमें प्रवेश करूँ। (भीतर जा कर, सफ़ाई करके, आसन रख कर) मैंने सफ़ाई कर दी। और आसन भी ठीक रख दिये। अब न्याय-विचारकों से जा कर निवेदन करूँ। (घूम कर और देख कर) दुष्ट और खल राजा का साला क्यों आ रहा है इधर ही ? मैं इसकी नज़र बचा कर निकल चलूँ।

[एकांत में खड़ा हो जाता है। शुभ्र वस्त्र पहने शकार का प्रवेश]

शकार : मैं उपवन में युवती शित्रयों के शाथ गंधर्व के शमान श्नान कर चुका हूँ। कभी मैंने केश बांधे, कभी जूड़ा बनाया, कभी यों ही लटकते रहने दिया, क्षण में उन्हें बिखरा दिया और क्षण में ही मैंने उनकी वेणी गूँथ दी। यों मैं राजा का शाला

चित्र-विचित्र रूप धारण करता हूँ। कमल-नाल में घुशे कीड़े की तरह छेद खोजते शमय मैंने खूब बड़ा छेद बना दिया![1] इश महान अपराध को किश पर थोप दूँ? (**याद कर के**) अहा! याद आया। इशे तो गरीब चारुदत्त पर लगा दूँ। वह गरीब है, उश पर सब कुछ लागू हो सकता है। पहले न्याय-मण्डप में जा कर अभियोग लिखवा दूँ कि उशने गला घोंट के वशंतशेना को मार डाला। तो वहीं चलूँ। (**घूम कर, देख कर**) आ गया न्याय-मण्डप। इशमें चलूँ। (**प्रवेश कर के देख कर**) आशन तो लगाये जा चुके हैं। जब तक यहाँ के कार्य्यकर्त्ता आयें, मैं जरा इश दूब वाले आंगन में बैठ कर उनकी बाट जोह लूँ। (**बैठता है।**)

शोधनक : (**दूसरी ओर घूम कर, देख कर**) न्यायकर्मचारी आ रहे हैं। पास चलूँ।

[**प्रस्थान**]

[**श्रेष्ठि, कायस्थ आदि से घिरे न्यायाधीश का प्रवेश**]

न्यायाधीश : अरे श्रेष्ठि! कायस्थ!

श्रेष्ठि कायस्थ : आर्य्य! आज्ञा दें!

न्यायाधीश : न्याय के पराधीन होने के कारण वादी-प्रतिवादी के मन की बात जान लेना हम लोगों के लिये कितना कठिन है! वे लोग सचाई को छिपा कर अनीति और असत्य-भरे अभियोग लाते हैं, क्रोध के वश में हो कर अपने दोषों को नहीं देखते, दोनों तरफ से तूल दिया पाप ही राजा के पास पहुँचता है। दोष अंत में न्यायाधीश पर लगता है। उसके दूरवर्त्ती गुण आसान

---

१. अर्थात् वसंतसेना की हत्या कर दी।

नहीं हैं। सज्जन भी तो यहाँ अपने दोष नहीं बताते। वे भी निश्चय नष्ट हो जाते हैं। दोनों ओर के दोष पा कर वे पाप करते हैं। यों दोष लगाना सहज है, और उसके दूरवर्त्ती गुणों को प्रगट करना सहज नहीं है। न्यायाधीश को धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र जानना चाहिये। उसे वादी-प्रतिवादी के कपट व्यवहार को समझने में दक्ष होना चाहिये। उसे क्रोध रहित होना ही ठीक है। वह तो खूब बोलने में समर्थ हो, मित्र, शत्रु, पुत्र और स्वजनों को एक दृष्टि से देखे। उचित रूप से सबके अभियोगों को सुन-समझ कर निर्णय दे। निर्बलों को पालने वाले, धूर्त्तों को दण्ड देने वाले, धर्म्म में ही सारा लोभ लगाये रखने वाले न्यायाधीश को असली बात जाँचने में और राजा का कोप दूर करने में लगा रहना चाहिये।

श्रेष्ठि कायस्थ : आपमें भी यदि दोष बताया जाता है तो चंद्रमा को भी अंधेरा ही कहा जायेगा।

न्यायाधीश: भद्र ! शोधनक ! न्याय-मण्डप का मार्ग दिखाओ !

शोधनक : आइये-आइये, न्यायाधीश महोदय ! आइये।

[**चलते हैं।**]

शोधनक : आ गया। आप लोग प्रवेश करें।

[**सबका प्रवेश**]

न्यायाधीश : भद्र शोधनक ! बाहर जा कर पता लगाओ कि आज विचार-प्रार्थी कौन-कौन हैं ?

शोधनक : जैसी आपकी आज्ञा। (**बाहर निकल कर**) सज्जनो ! न्यायकर्त्ता पूछते हैं कि आज कौन-कौन न्याय के प्रार्थी बन कर आये हैं ?

शकार : (**प्रसन्नता से**) उपस्थित हैं न्यायाधीश ! (**अहंकार से बढ़ कर**)

मैं उपश्थित हूँ कार्य्यार्थी बन कर, श्रेष्ठि पुरुष, मनुष्य वाशुदेव, राजा का शाला ! राज्य का शाला !

शोधनक (घबराया-सा) हाय रे ! सबसे पहले राजा का साला ही कार्य्यार्थी है ? अच्छा आर्य्य ! क्षरण भर ठहरिये ! मैं न्याय-अधिकारियों से निवेदन कर के आता हूँ। (जा कर) आर्य्यगरण ! राजा का साला कार्य्यार्थी बन कर न्याय के लिये उपस्थित है ।

न्यायाधीश : सबसे पहले वही है ? जैसे सूर्य्योदय के समय यदि ग्रहरण पड़े तो वह किसी बड़े आदमी की मौत की सूचना देता है, वैसा ही लगता है । आज न्याय-विचार में भी व्याकुलता छा जायेगी । भद्र ! बाहर जा कर कहो कि जाओ ! आज तुम्हारे अभियोग पर विचार नहीं होगा ।

शोधनक : जैसी आर्य्य की आज्ञा । (बाहर शकार के पास जा कर) आर्य्य ! न्यायाधिकारी कहते हैं कि आज आपके अभियोग पर विचार नहीं होगा ।

शकार : (क्रोध से) क्यों नहीं होगा ? नहीं होगा तो बहिन के पति राजा पालक शे कह कर, बहिन और माता को शूचना दे कर, इश न्यायाधीश को निकलवा कर इशके श्थान पर किशी और को तैनात करवाऊंगा । (जाना चाहता है।)

शोधनक : आर्य्य ! राष्ट्र के साले ! क्षरण भर रुकिये, मैं अभी न्याया-धिकारियों से कह कर आता हूँ । (भीतर जा कर) राजा का साला कहता है आर्य्य ! कि वह राजा से कह कर न्यायाधीश बदलवा देगा । वह क्रुद्ध है ।

न्यायाधीश : यह मूर्ख सब कुछ कर सकता है । भद्र ! कह दो कि आओ, तुम्हारे अभियोग पर विचार होगा ।

शोधनक : (**शकार के पास जा कर**) आर्य्य ! न्यायाधिकारी कहते हैं कि आइये, विचार होगा। चलिये।

शकार : पहले कहते हैं—नहीं होगा। अब कहते हैं—होगा। न्यायाधीश डर गये हैं। जो कुछ मैं कहूँगा उशी पर विश्वाश करवा लूँगा। चलूँ। (**प्रवेश कर पास जा कर**) हम लोगों को शुख मिले। तुम लोगों को भी दूँगा, नहीं, नहीं दूँगा।

न्यायाधीश : (**स्वगत**) इस कार्य्यार्थी की ऐसी निर्भीकता ! (**प्रगट**) बैठ जाइये !

शकार : अरे ! यह तो अपनी भूमि है। जहाँ इच्छा होगी वहीं बैठूँगा। (**श्रेष्ठि से**) यहाँ बैठूँगा। (**शोधनक से**) नहीं, यहाँ बैठँगा। (**न्यायाधीश के सिर पर हाथ रख कर**) यहाँ बैठूँगा।

[**भूमि पर बैठ जाता है।**]

न्यायाधीश : आप कार्य्यार्थी हैं ?

शकार : नहीं तो क्या ?

न्यायाधीश : कहिये, क्या कार्य है ?

शकार : कान में कहूँगा। मैं विशाल गल्लर्क कुल में जो जन्मा हूँ ! मेरे पिता राजा के शशुर हैं, राजा श्वयं मेरे पिता के जमाई हैं, मैं राजा का शाला हूँ, राजा मेरी बहिन के पति हैं !

न्यायाधीश : सब जानते हैं। कुल की प्रशंसा करने से क्या लाभ ? शील ही सबसे मुख्य वस्तु होती है। अच्छे खेत में कँटीले पेड़ भी खूब फैलते हैं, बढ़ते हैं। आप अपना कार्य्य उपस्थित करिये !

शकार : कहता हूँ। मैं अपराध करूँ तब भी राजा मुझे दण्ड नहीं दे शकते। मेरी बहन के पति राजा ने प्रशन्न हो कर मुझे विहार और रक्षा करने को शर्वप्रधान जीर्णोद्यान पुष्पकरण्डक

दिया है। वहाँ नित्य देखभाल करने, दुष्टों का दमन करने, बेकार के वृक्ष उखड़वाने को, शिचाई और घास कुटवाने को मैं जाया करता हूँ। मैंने शंयोग शे वहाँ एक श्त्री का शरीर पड़ा देखा, नहीं, नहीं देखा।

न्यायाधीश : जानते हैं वह कौन स्त्री मरी पड़ी थी ?

शकार : ओ न्यायाधिकारियो ! क्या मैं उशे नहीं जानूँगा जो उज्जयिनी नगर का शृंगार थी, शौ-शौ आभूषण पहनती थी ! किशी कपूत ने क्षणभंगुर धन के लिये शूने पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में प्रवेश करके गला घोंट कर वशन्तशेना को मार डाला। मैंने नहीं...... (**इतना कह कर ही मुँह को ढंक लेता है।**)

न्यायाधीश : अरे ! यह नगररक्षकों की असावधानी है। ऐ श्रेष्ठि ! कायस्थ ! सबसे पहले इस विचारणीय शब्द को लिख लीजिये—मैंने नहीं !

कायस्थ : जैसी आर्य्य की आज्ञा। (**लिख कर**) आर्य्य ! लिख लिया।

शकार : (**स्वगत**) हाय-हाय ! दूशरे के अन्न पर चलने वाले आदमी की तरह मैंने घबराहट में आज अपनी ही आत्मा को नष्ट कर दिया। अच्छा ! देखा जायेगा।

(**प्रगट**) हे न्यायकर्त्ताओ ! कहता हूँ कि मैंने ही देखा है। तुम लोग कोलाहल क्यों करते हो ?

[**पैर से लिखे हुए को मिटाता है।**]

न्यायाधीश : तुम्हें कैसे पता कि धन के लिये गला घोंट कर भुजाओं में भींच कर मारा ?

शकार : आभूषण विहीन होने शे, गले में हारशूत्रावली न रहने शे, और हर जगह का गहना उतरा होने शे।

श्रेष्ठि कायस्थ : यह हो सकता है।

शकार : (स्वगत) अहा ! भाग्य शे मैं फिर जी उठा ।

श्रेष्ठि कायस्थ : यह विवाद निर्णय के लिये किस मनुष्य की अपेक्षा करता है ?

न्यायाधीश : इस विवाद-निर्णय में दुविधा है ।

श्रेष्ठि कायस्थ : कैसी दुविधा ?

न्यायाधीश : वाक्यानुसार और अर्थानुसार ! जो वाक्यानुसार है उसमें कार्यार्थी के वाक्य से सब निकलता है, और अर्थानुसार न्यायाधीश अपनी बुद्धि से निर्णय करता है ।

श्रेष्ठि कायस्थ : वसंतसेना की माता निर्णय चाहती है ।

न्यायाधीश : यह बात है ! शोधनक ! बिना किसी घबराहट को फैलाये, वसंतसेना की माता को बुलाओ ।

शोधनक : अच्छा ।

(**बाहर जा कर, वसंतसेना की माँ के साथ लौट कर**) आइये, आइये, आर्य्या !

वृद्धा : मेरी पुत्री मित्र के घर अपने यौवन का सुख अनुभव करने गई है । और यह चिरंजीव मुझसे कहता है कि चलो ! न्यायाधीश बुलाते हैं ! मैं तो मूर्च्छित हुई जा रही हूँ, हृदय काँप रहा है । आर्य्य ! न्याय-मण्डप का रास्ता मुझे बताइये ।

शोधनक : इस ओर से चलिये, आइये ।

[**दोनों चलते हैं ।**]

शोधनक : यही न्याय-मण्डप है । इसमें प्रवेश करिये ।

[**दोनों प्रवेश करते हैं ।**]

वृद्धा : (**आकर**) श्रेष्ठों का मंगल हो ।

न्यायाधीश : भद्रे ! स्वागत है । बैठिये ।

वृद्धा : अच्छा ! (**बैठ जाती है ।**)

शकार : (अहंकार से) आ गई बुड्ढी कुटनी । आ गई ।

न्यायाधीश : अरी ! तुम वसंतसेना की माता हो !

वृद्धा : हाँ ।

न्यायाधीश : इस समय वसंतसेना कहाँ गई है ?

वृद्धा : मित्र के घर ।

न्यायाधीश : उसके मित्र का नाम क्या है ?

वृद्धा : (स्वगत) हाय ! हाय ! यह तो बड़ी लज्जा की बात है। (प्रगट) यह तो साधारण जनता का प्रश्न हो सकता है, न्यायाधीश का नहीं ।

न्यायाधीश : लज्जा मत करो । मैं एक खास बहस को तय करने के लिये पूछ रहा हूँ ।

श्रेष्ठि कायस्थ : न्याय-व्यवहार पूछ रहा है । इसमें कोई दोष नहीं है, बोलो ।

वृद्धा : न्याय-व्यवहार के लिये बताऊँ ? श्रेष्ठजन सुनें । वह श्रेष्ठि विनयदत्त के नाती, सागरदत्त के पुत्र, स्वनामधन्य आर्य्य चारुदत्त के गई है, जो श्रेष्ठि चत्वर में रहते हैं। मेरी पुत्री उन्हीं के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है।

शकार : आप लोगों ने शुन लिया ? इन शब्दों को लिख लीजिये । मेरा विवाद चारुदत्त के शाथ है ।

श्रेष्ठि कायस्थ : चारुदत्त मित्र है, इसमें कोई दोष नहीं है ।

न्यायाधीश : यह विवाद-निर्णय चारुदत्त की अपेक्षा करता है ।

श्रेष्ठि कायस्थ : यह ठीक है ।

न्यायाधीश : धनदत्त ! व्यवहार का प्रथम पाद लिखिये कि वसंत-सेना आर्य्य चारुदत्त के घर गई । क्या हम लोग आर्य्य चारुदत्त को भी बुलायें ? या विवाद ही उन्हें बुलाता है ? भद्र शोधनक !

जाओ ! आर्य्य चारुदत्त को विनम्र हो कर धीरे-धीरे बिना किसी घबराहट के आदरपूर्वक बुलाओ। कहना कि न्यायाधीश विवाद-निर्णय के लिये आपको बुलाते हैं।

शोधनक : जैसी आर्य्य की आज्ञा। (**प्रस्थान, फिर चारुदत्त के साथ प्रवेश**) चलें। आर्य्य, आयें !

चारुदत्त : (**सोच कर**) राजा हमारे कुल और स्वभाव से परिचित हैं। फिर भी बुलाया है ? वास्तव में यह गरीबी ही संदेह पैदा कर रही है। गरीबी में हर तरह की शंका होती है। (**मन में तर्क करते हुए**) बंदीगृह से बंधन तोड़ कर भागा हुआ आर्य्यक मेरे घर के पास आया, और मैंने अपनी ही गाड़ी पर बिठा कर उसे दूर भेज दिया, क्या स्वयं राजा ने यह दृश्य देख लिया, या किसी चर ने राजा तक यह समाचार पहुँचा दिया कि मैं न्यायालय में अपराधी की तरह लाया गया हूँ ? तर्क-वितर्क से क्या लाभ ? न्यायालय में ही चलूँ (**प्रगट**) भद्र शोधनक ! मार्ग दिखाओ !

शोधनक : आइये आर्य्य ! आइये !

[**चलते हैं।**]

चारुदत्त : (**शंका से भरा हुआ**) और क्या बात हो सकती है ? कौआ कठोर शब्द से बोल रहा है। न्यायालय के नौकर बार-बार बुला रहे हैं। मेरी बांई आँख हठात् फड़क रही है, ये बिना कारण के अपशकुन मुझे व्याकुल कर रहे हैं।

शोधनक : आर्य्य ! धीरे-धीरे बिना चिंता के इस रास्ते से चले आइये !

चारुदत्त : (**घूम कर और देख कर**) सूर्य्य की ओर मुख कर के सूखे पेड़ पर बैठा यह कौआ अपनी बाईं आँख मेरी ओर कर रहा

है। इसमें कोई संदेह नहीं! (**फिर दूसरी ओर देख कर**) अरे! यह सर्प है! काजल-सा काला और नीला है इसका शरीर! जीभ बाहर लपलपा रही है। और मेरी ओर आँखें गड़ाये है। चार उजले दाँत दिखाई पड़ रहे हैं। वायु से भरा हुआ इसका पेट टेढ़ा-मेढ़ा हो रहा है। यह विशाल नागराज मेरे रास्ते में आ पड़ा है। और क्रोध भरा मेरी ओर आ रहा है! पृथ्वी सूखी है, फिसलनी नहीं, फिर भी मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं। मेरी बाँहें भी बार-बार काँप रही हैं और यह पक्षी भी निरंतर मेरे विरुद्ध-सा बोल रहा है। यह अपशकुन मेरी भयानक मृत्यु की सूचना दे रहे हैं। इसमें तो कोई संदेह नहीं। देवगण मेरा कल्याण करें।

शोधनक : आइये आर्य्य! आयें। यह न्याय-मण्डप है, प्रवेश करें।

चारुदत्त : (**भीतर जा कर, चारों ओर देख कर**) वाह! न्याय-मण्डप की कैसी अपूर्व शोभा है। राज-काज में लगे मंत्री जल जैसे हैं; दूतगण तरंग और शंखों-से चंचल हैं। एक किनारे खड़े गुप्तचर मगर और घड़ियाल जैसे हैं। हाथी-घोड़े भयंकर जल-जंतुओं के-से लगते हैं। तरह-तरह से बोलते वादी-प्रतिवादी कंक पक्षी जैसे हैं, और लेखक कायस्थ कुटिल सर्प-से लग रहे हैं। यहाँ नीति ही टूटा हुआ कगारा है, यह न्यायालय हिंसापूर्ण समुद्र-सा दिखाई देता है। अच्छा। (**प्रवेश करते हुए सिर पर चोट लगने का-सा अभिनय करता हुआ सोचता-सा**) अरे! फिर बाईं आँख फड़की, कौआ बोला। साँप आ गया बीच में! अब देवगण ही कल्याण करें। चलूँ। (**प्रवेश करता है।**)

न्यायाधीश : यही चारुदत्त है? ऊँची नाक, कानों तक फैले विशाल लोचन! ऐसा आदमी दोष लगाने लायक नहीं हो सकता।

हाथी, गाय, घोड़ा और मनुष्य, इनके रूप से इनके चरित्र का पता लगता है ।

चारुदत्त : न्यायकर्त्ताओं का कल्याण हो ! आप सकुशल तो हैं ?

न्यायाधीश : (**कुछ सकपका कर**) आपका स्वागत है आर्य्य ! भद्र शोधनक ! आर्य्य के लिये आसन लाओ ।

शोधनक : (**आसन ला कर**) लीजिये । आप बैठें ।

[**चारुदत्त बैठता है ।**]

शकार : (**क्रोध से**) आ गये श्त्रीघातक ! आ गये ! अरे न्याय-निर्णय है ! धर्म-निर्णय है !! तो इश श्त्रीघातक को आशन दिया जा रहा है ? (**अहंकार से**) अच्छा दीजिये ! दीजिये !

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! इस आर्य्या की पुत्री से आपका रमण, प्रणय या प्रेममात्र का संबंध है ?

चारुदत्त : किसको ?

न्यायाधीश : इसकी (**इशारे से वसंतसेना की माँ को दिखाता है ।**)

चारुदत्त : (**उठ कर**) आर्य्या का अभिवादन करता हूँ ।

वृद्धा : वत्स ! चिरंजीव हो ! (**स्वगत**) यही वह चारुदत्त है ! मेरी पुत्री ने योग्य पुरुष को यौवन अर्पित किया है ।

न्यायाधीश : आर्य्य ! गणिका आपकी मित्र है ?

[**चारुदत्त लज्जित होता है ।**]

शकार : ओ झूँठे ! लज्जा और कायरता शे अपने चरित्र की रक्षा करना चाहते हो ? धन के कारण श्वयं श्त्री-हत्या कर के उशे अब छिपाना चाहते हो ? यह शाधु जनों के लिये उचित नहीं है ।

श्रेष्ठि कायस्थ : आर्य्य चारुदत्त ! बताइये । लज्जा न करें । यह व्यवहार का स्थान ै ।

चारुदत्त : (झेंपता हुआ) हे न्यायाधिकारीगण ! यह मैं कैसे कहूँ कि गणिका मेरी मित्र है । इस विषय में केवल यौवन अपराधी है, चरित्र नहीं ।

न्यायाधीश : यह व्यवहार बड़ा विघ्न-भरा है । इसलिये मन की लज्जा दूर करो और सच-सच कहो । धैर्य्य धारण कर के चुप रह जाना ठीक नहीं है, यहाँ कपट-भरी बातें काम नहीं देतीं । लज्जा हो चुकी । यह प्रश्न तुमसे न्याय-निर्णय करता है ।

चारुदत्त : अधिकारीगण ! मेरा विवाद किससे है ?

शकार : (दर्प से) अरे ! मेरे शाथ है, मेरे ।

चारुदत्त : यह तो अत्यंत दुस्सह है ।

शकार : अरे स्त्री-हत्या करने वाले ! शैकड़ों शोने के शुंदर-शुंदर आभूषण पहनी वशंतशेना को मार कर अब कपट और धूर्त्तता कर के उशे छिपाना चाहता है ?

चारुदत्त : क्या बेसिर-पैर की बकते हो ?

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! बस, बहुत हुआ । सत्य कहिये । क्या गणिका आपकी मित्र थी ?

चारुदत्त : हाँ ।

न्यायाधीश : आर्य्य ! वसंतसेना कहाँ है ?

चारुदत्त : घर गई ।

श्रेष्ठि कायस्थ : कैसे गई ? कब गई ? किसके साथ गई ?

चारुदत्त : (स्वगत) क्या यह कह दूँ कि वह गुप्तरूप से गई है ?

श्रेष्ठि कायस्थ : कहिये आर्य्य !

चारुदत्त : घर गई, और क्या कहूँ ?

शकार : मेरे पुष्पकरण्डक जिर्णोद्यान में ले जा कर धन के कारण

गला घोंट कर जकड़ के उशे मार डाला और अब कहता है कि वह घर चली गई ?

चारुदत्त : ओ अनर्गल प्रलाप करने वाले ! आकाश के मेघ से सुनहले चातक की तरह तुम्हारी चोंच नहीं भींगी है। हेमन्त के कमल की तरह झूठ बोलने से तुम्हारा मुँह मलिन हो रहा है।

न्यायाधीश : (**धीरे से**) हिमालय को उठाने के समान, सागर को लाँघने के समान, वायु को वस्त्र में बाँधने की तरह चारुदत्त पर यह दोष लगाना असम्भव है। (**प्रगट**) आर्य्य चारुदत्त इस अकार्य्य को कैसे कर सकते हैं ? ऊँची नाक, विशाल लोचन की भव्य आकृति देख कर ही चरित्र का पता चलता है !

शकार : कैसा पक्षपात हो रहा है !

न्यायाधीश : धिक् मूर्ख ! अधम व्यक्ति होते हुए भी तुम वेदार्थ बोलते हो। फिर भी तुम्हारी जीभ नहीं गिर पड़ती ! दुपहर का तेज़ सूरज देखते हो और आँखें नहीं चौंधिया जातीं ? धधकती आग में हाथ देते हो और फिर भी वह भस्म नहीं हो जाता ? चारुदत्त पर झूँठा अभियोग लगा कर अपना चरित्र दूषित करते हो, फिर भी पृथ्वी तुम्हारी देह को नहीं निगल जाती ? आर्य्य चारुदत्त ऐसा बुरा काम कैसे कर सकेगा ? उसके कारण समुद्र में से हीरे निकल गये, केवल जल भर रह गया है। जिसने इतना दान किया कि स्वयं के लिये कुछ भी बाकी नहीं रखा। वह कल्याण का अनुपम वासस्थल महात्मा चारुदत्त जो शत्रु तक का धन नहीं लेता, धन के लिये ऐसा पाप करेगा ?

शकार : कैशा पक्षपात हो रहा है ?

वृद्धा : हाय ! इसने तो उस दिन धरोहर रखे सुवर्णाभूषण के रात

में चोरी चले जाने पर उसके बदले अत्यन्त अमूल्य रत्नावली दे दी थी ! वह क्या क्षणभंगुर वैभव के लिये ऐसा बुरा काम कर सकता है ? हा बेटो ! आ जा मेरी बेटी ! (रोती है।)

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! क्या वह पैदल गई थी ? या गाड़ी पर गई थी ?

चारुदत्त : वह मेरे सामने नहीं गई। मैं नहीं बता सकता।

वीरक : (**क्रोध सहित प्रवेश कर**) चंदनक ने लात मार दी है, मैं उसका घोर शत्रु हूँ। उससे बदला लूँगा। यही सोचते रात बीत कर सवेरा हो गया। अब न्याय-मण्डप में चलूँ (**प्रवेश कर**) आप सभ्यगण ! सकुशल तो हैं ?

न्यायाधीश : नगर-रक्षक वीरक ! तुम्हारे आने का कारण वीरक ?

वीरक : आर्य्यक बंधन तोड़ कर भाग निकला। उसे खोजते में देखा पर्दों से ढंकी एक गाड़ी जा रही थी। कहीं वही न हो यह देखने को मैं चंदनक के बाद उस गाड़ी को देखना चाहता था कि चंदनक ने मुझे लातें मारीं। मैं न्याय के लिये आया हूँ।

न्यायाधीश : किसकी थी वह गाड़ी भद्र !

वीरक : इस आर्य्य चारुदत्त की। वसंतसेना उस पर बैठी थी, गाड़ीवान ने कहा था कि पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में विलास करने जाती है।

शकार : आप लोगों ने शुन लिया न ?

न्यायाधीश : चाँदनी वाला यह चंद्रमा राहु की चपेट में आ गया है। शुद्ध जल किनारे के गिरने से गँदला हो रहा है। वीरक ! तुम्हारा न्याय पीछे होगा। न्यायालय के द्वार पर जो घोड़ा है, उस पर चढ़ कर पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में जा कर देखो, वहाँ कोई मरी स्त्री पड़ी है या नहीं ?

वीरक : जैसी आर्य्य की आज्ञा । (**प्रस्थान । पुनः प्रवेश कर**) वहाँ से हो आया । स्त्री की देह भी देखी, किन्तु उसे जन्तु खा रहे थे ।

श्रेष्ठि कायस्थ : तुमने कैसे जाना कि वह स्त्री की देह थी ?

वीरक : उसके लंबे बाल, उसके हाथ-पाँव के आभूषण से, जो बचे हुए हैं ।

न्यायाधीश : अरे ! लोक-व्यवहार कितना विषम है । इसे धिक्कार है । जितनी ही सूक्ष्मता से देखता हूँ उतना ही संकट बढ़ता लगता है । नीति से सोचता हूँ तो मेरी बुद्धि कीचड़ में फँसे बैल-सी सकते-से में पड़ गई है ।

चारुदत्त : (**स्वगत**) जैसे कली के खिलते ही उसका रस पीने कई भौंरे उस पर एक साथ आ टूटते हैं, वैसे ही आपत्ति के समय मनुष्य की एक भूल पर अनेक विपत्तियाँ आ एकत्र होती हैं ।

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! सच-सच कहो ।

चारुदत्त : इस संसार में दूसरे के गुणों से जलने वाला, बुरी आत्मा का, काम से अन्धा और परहानिरत, दुर्जनतावश जो दूसरों पर दोष लगता है क्या उसकी बात माननी चाहिये ? क्या वह अविचारणीय नहीं होता ? मैं तो फूल लेने को प्रफुल्लित लता को भी नहीं झुकाता । वही मैं भौंरे जैसे नीले केश वाली के लंबे केश खींच कर रोती हुई कामिनी को कैसे मार सकता हूँ ?

शकार : न्यायाधिकारियो ! क्या आप पक्षपात शे मामले का निर्णय कर रहे हैं ? अभी तक यह जवाब देने में हताश चारुदत्त आसन पर बैठा हुआ है ?

न्यायाधीश : भद्र ! शोधनक ! यही करो !

[**शोधनक चारुदत्त को आसन से उतारता है ।**]

चारुदत्त : विचार करो, अधिकारियो, विचार करो !

[**आसन से उतर कर भूमि पर बैठ जाता है ।**]

शकार : (**स्वगत, हर्ष से नाच कर**) अहा ! मैंने अपना पाप दूशरे पर थोप दिया। जहाँ चारुदत्त बैठता, वहाँ मैं बैठा हूँ और उश पर हँसता हूँ। (**हँस कर**) चारुदत्त ! देखो मुझे देखो ! अब कहो—वशंतशेना को मैंने मारा है ?

चारुदत्त : अरे अधिकारियो ! (**निश्वास ले कर**) दुष्ट का क्या ठिकाना ! मैत्रेय ! इस आपत्ति से मैं कैसे मर रहा हूँ। हा धूते ! तुम पवित्र ब्राह्मण कुल में जन्मीं ! हा रोहसेन ! तू मेरी विपत्ति नहीं देख रहा ! तू व्यर्थ ही झूँठे खेल में मग्न हो कर प्रसन्न होता है। उसको ढूँढ़ कर लाने को मैंने मैत्रेय को वसंतसेना के पास भेजा है। मैत्रेय को, रोहसेन को दिये सोने के गहने वापस देने वसंतसेना के यहाँ मैंने कब का भेजा है ? अभी तक क्यों नहीं आया ?

[**आभूषण लिये विदूषक का प्रवेश**]

विदूषक : मुझे अलंकारों को ले कर आर्य्य चारुदत्त ने वसंतसेना के पास भेजा है, कि सब लौटा आऊँ। चलूँ। (**घूम कर और आकाश की ओर देख कर**) क्या कहा ? क्या कहा विद्वान रेभिल ! तुम इतने व्यस्त क्यों हो ? (**सुन कर**) क्या कहते हो ? प्रिय मित्र चारुदत्त को न्यायालय में बुलाया गया है ? तब कोई बड़ी बात होगी। (**सोच कर**) वसंतसेना के पास फिर जाऊँगा। पहले न्याय-मण्डप चलूँ। (**घूम कर और देख कर**) यही तो है। चलूँ भीतर (**प्रवेश कर**) अधिकारीगण सकुशल तो हैं ? मेरे प्रिय सखा कहाँ हैं ?

न्यायाधीश : यहाँ बैठे हैं।

विदूषक : मित्र ! तुम्हारा कल्याण हो ।

चारुदत्त : होगा !

विदूषक : आप सकुशल तो हैं ?

चारुदत्त : होंगे ।

विदूषक : क्या बात है ? ऐसे उद्विग्न क्यों हैं ? यहाँ क्यों बुलाये गये हैं ?

चारुदत्त : मित्र ! मुझ कठोर परलोक को न जानने वाले ने वसंतसेना को······(**शकार की ओर दिखा कर**) इसी से पूछो ।

विदूषक : क्या ? क्या ?

चारुदत्त : (**कान में**) समझे ?

विदूषक : कौन कहता है यह ?

चारुदत्त : (**शकार की ओर इशारा करता है ।**) यह क्षुद्र तो प्रगट कारण है, वैसे वास्तव में दैव ही यह कह रहा है ।

विदूषक : (**धीरे से**) यह कौन नहीं कहता कि वह घर गई है ?

चारुदत्त : कहूँ तो भी दरिद्र की सुनता कौन है ?

विदूषक : आर्य्यो ! जिसने गरीबों के लिये घर बनवाये, बौद्ध विहार, उद्यान, देवमंदिर, सरोवर, कूंए और यज्ञ-स्तंभ बनवा कर उज्जयिनी नगरी को सुन्दर बनवाया, वह गरीब क्या क्षण-भंगुर धन के लोभ में पड़ कर ऐसा बुरा काम कर सकता है ? (**क्रोध से**) ओ काणेलीपुत्र ! राजा के साले संस्थानक ! नीच उच्छृंखल ! जनता को दूषित करने, सोने के गहनों से सजे बंदर ! कह ! मेरे सामने कह ! जो मेरा मित्र माधवीलता के फ़ूल तोड़ने के समय भी लता को नहीं झुकाता कि कहीं पत्ते न टूट जायें, वह दोनों लोकों के विरुद्ध ऐसा काम कैसे कर सकता है ? ठहर कुटनी के पुत्र ! आ तेरे हृदय जैसे कुटिल

इस काठ के डण्डे से तेरे सिर को टुकड़े-टुकड़े करता हूँ।

शकार : (क्रोध से) शुनिये-शुनिये आर्य्यगण ! मेरा विवाद यदि चारुदत्त शे है तो यह कौए के पाँव जैशे माथे वाला क्यों मेरे शिर के टुकड़े-टुकड़े करना चाहता है ! दाशीपुत्र ! ऐशा मत बोल ! दुष्ट ब्राह्मण।

[विदूषक डंडा ले कर 'ठहर अभी बताता हूँ' कहता है, कि शकार क्रोध से उसे उठ कर मारता है। विदूषक भी उसे मारता है। आपस में मारपीट करते में विदूषक की काँख से सोने के गहने गिर पड़ते हैं।]

शकार : (उन्हें उठा कर भय से) देखें-देखें। आर्य्यगण ! ये उशी तपश्विनी के आभूषण हैं। (चारुदत्त को दिखा कर) इन्हीं क्षण-भंगुर गहनों के कारण वह मारी गई।

[सारे अधिकारियों के सिर नीचे हो जाते हैं।]

चारुदत्त : (धीरे से) भाग्य के दोष से, विपत्तिग्रस्त अधिकारियों से घिरे हुए मेरे लिये यह अलंकार तो बस आफ़त कर देंगे।

विदूषक : सच बात क्यों नहीं कह देते ?

चारुदत्त : मित्र ! राजा के न्यायाधिकारियों की आँखें असली बात देखने में असमर्थ हैं। यहाँ तो कहना ही अपनी दीनता प्रगट करना है। लाभ क्या ? फिर भी निंदनीय मृत्यु ही मिलेगी।

न्यायाधीश : कष्ट ! घोर कष्ट ! मंगल विरुद्ध था, अब क्षीण बृहस्पति के बगल में यह दूसरा धूमकेतु उग आया ![1]

श्रेष्ठि कायस्थ : (वसंतसेना की माता से) आप गौर से देखिये, यह गहने आपके हैं या नहीं ?

वृद्धा : (देख कर) हैं वैसे ही, पर वही नहीं हैं।

---

१. लाश मिली, फिर गहने।

शकार : अरी बूढ़ी कुटनी ! आँख से कहा, मुँह से छिपाती है ?

वृद्धा : चल हट ! दूर रह ।

श्रेष्ठि कायस्थ : सावधान हो कर बताओ ! यही है या नहीं ?

वृद्धा : आर्य्य ! शिल्पी का कौशल आँखों को बाँधता है, पर यह तो वह नहीं हैं ।

न्यायाधीश : भद्रे ! इन अलंकारों को पहँचानती हो ?

वृद्धा : बताती तो हूँ कि पहँचाने-से लगते हैं, शायद वैसे ही बनवाये गये हैं ।

न्यायाधीश : श्रेष्ठि ! देखो ! गहनों की तो नकल बन सकती है। शिल्पी बिल्कुल वैसे ही बना लेते हैं। ऐसी घटनाएँ तो हम पहले भी देख चुके हैं !

श्रेष्ठि कायस्थ : ये आर्य्य चारुदत्त के अलंकार हैं ?

चारुदत्त : नहीं, बिल्कुल नहीं ।

श्रेष्ठि कायस्थ : तब किसके हैं ?

चारुदत्त : इन वृद्धा की पुत्री के ।

श्रेष्ठि कायस्थ : उससे ये अलग कैसे हुए ?

चारुदत्त : चले गये । हाय ! चले गये !

श्रेष्ठि कायस्थ : आर्य्य चारुदत्त ! यहाँ सच बोलना चाहिये । देखो, सत्य से सुख मिलता है, सत्य बोलने वाला पतित नहीं होता । सार अक्षर दो हैं सत्य । इन्हें झूँठ से न मिलाओ ।

चारुदत्त : वही गहने हैं या नहीं, मैं नहीं जानता । पर जानता हूँ कि मेरे घर से आये हैं ।

शकार : पहले तो बाग में ले जा कर उशे मार डाला और कपट करके धूर्त्तता से उशे अब छिपाते हो ?

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! सच बोलो ! अब तुम्हारे कोमल

शरीर पर कठोर बेंत पड़ेंगे। यही हमारा मनोरथ होगा। निर्भीकता से सह लोगे ?

चारुदत्त : मैं निष्कलंक कुल में जन्मा हूँ। मुझमें पाप नहीं है और अगर संभव है, तो फिर मुझ पापी के जीने से भी क्या लाभ है। (**स्वगत**) मुझे वसंतसेना के बिना जीना ही व्यर्थ लगता है। (**प्रगट**) मैं और कुछ नहीं कहना चाहता। शकार यही कहेगा कि मैंने वसंतसेना को मारा है। मैं कठोर हूँ। मैं लोक-परलोक नहीं जानता।

शकार : मारा है ! अरे अब तू कह कि मैंने मार डाला।

चारुदत्त : तुमने तो कह ही दिया !

शकार : शुनिये ! शुनिये ! इशी ने मारा है, अब यह शंदेह भी इश ने दूर कर दिया। इश दरिद्र चारुदत्त को शारीरिक दण्ड दीजिये।

न्यायाधीश : शोधनक ! शकार ठीक कहते हैं। राजपुरुषो ! चारुदत्त को पकड़ लो।

[राजपुरुष पकड़ते हैं।]

वृद्धा : प्रसन्न हों। आर्य्य श्रेष्ठ प्रसन्न हों ! चोरों के चुराये भूषण के लिये इन्होंने अमूल्य रत्नावली दी थी। मेरी बेटी मारी गई तो मारी गई, यह चिरंजीव जीवित रहे। वादी-प्रति-वादी की बात है। मैं वादिनी हूँ। इन्हें छोड़ दो।

शकार : चल, दूर हट गर्भदाशो ! जा-जा ! तुझे इशशे क्या ?

न्यायाधीश : आर्य्ये ! जाओ ! हे राजपुरुषो ! इसे निकाल दो !

वृद्धा : हा वत्स ! हाय पुत्र। (**रोती हुई निकाल दी जाती है।**)

शकार : (**स्वगत**) मैंने अपने मन की कर ली। अब चलूँ।

[प्रस्थान]

न्यायाधीश : आर्य्य चारुदत्त ! हम लोग निर्णय के अधिकारी हैं। आगे राजा की इच्छा। शोधनक ! फिर भी राजा पालक को इसकी सूचना दे दो। मनु के अनुसार पापी ब्राह्मण भी मारा नहीं जा सकता। संपूर्ण वैभव के साथ इसे राज्य से निकाल दो।

शोधनक : जैसी आर्य्य की आज्ञा (**प्रस्थान। फिर गोली आँखों वाला लौट कर**) आर्य्यगण ! मैं राजा के पास हो आया। वे कहते हैं कि जिस क्षणभंगुर आभूषण के पीछे वसतसेना मारी गई, उसके गले में उसी को बाँध कर, नगाड़ा पीट कर, दक्षिण श्मशान में ले जा कर उसे सूली पर चढ़ा दो ! जो कोई भी ऐसा बुरा काम करेगा, वह ऐसे ही घृणित दण्ड से शिक्षा ग्रहण करेगा।

चारुदत्त : राजा पालक अविचारक है। मंत्रियों के कारण ही राजा व्यवहार में ऐसा करके अंत में बुरी अवस्था को प्राप्त हाते हैं। ऐसे ही अनिष्टकारक सफेद कौए से राजा के शासन की गलतियों से हजारों निष्पाप व्यक्ति मारे गये हैं और मारे जा रहे हैं। मित्र मैत्रेय ! जाओ ! मेरी ओर से मेरी माता को अच्छी तरह से अभिवादन करो। मेरे पुत्र रोहसेन का भी पालन करना।

विदूषक : जड़ ही कट जाये तो वृक्ष कैसे पलेगा ?

चारुदत्त : ऐसा न कहो। मनुष्य के परलोक जाने पर बेटा ही उस की जगह भरता है, प्रतिमूर्त्ति है। मुझ पर जो तुम्हारा प्रेम है उसे रोहसेन पर न्यौछावर कर देना।

विदूषक : मित्र ! तुम्हारा प्रिय मित्र हो कर, तुमसे बिछुड़ कर मैं कैसे जियूंगा ?

चारुदत्त : रोहसेन को मुझे दिखा देना !

विदूषक : अच्छी बात है।

न्यायाधीश : भद्र शोधनक ! इस ब्राह्मण को हटाओ !

[शोधनक हटाता है।]

न्यायाधीश : कौन है ? कौन है वहाँ ? चाण्डालों को आदेश दे दो।

[चारुदत्त को निकाल कर सब राजपुरुषों का प्रस्थान]

शोधनक : इधर आइये आर्य्य !

चारुदत्त : (करुण स्वर से) मैत्रेय ! मित्र ! यह आज क्या है ? (आकाश की ओर देख कर) मेरे शरीर पर चाण्डालों का आरा चलेगा, यह जान कर मैंने प्रार्थना की कि मुझे विष खिला कर मार डालो, जल में डुबा दो, यन्त्र या अग्नि से प्राण ले लो। किंतु शत्रु शकार के कहने से तुम मुझ ब्राह्मण को ऐसे मार रहे हो ? पुत्र और पौत्र के साथ तुम भी निश्चय नरक में गिरोगे ! आ रहा हूँ।

[सबका प्रस्थान]

[व्यवहार (मुकदमा) नामक नवाँ अंक समाप्त]

दसवाँ अङ्क

[दो चाण्डालों के साथ चारुदत्त का प्रवेश]

दोनों चाण्डाल : आप इस मरघट में आने का कारण क्यों नहीं सोचते ? हम दोनों हत्या और बंधन बाँधने में चतुर हैं। हम सहसा ही मारने और सूली पर चढ़ाने में निपुण हैं। हटिये सज्जन गण ! हटिये। यह चारुदत्त है जो मरने के पास आ गया है। करवीर फूलों की माला पहने, मारक चाण्डालों से पकड़ा हुआ, ऐसे क्षीण हुआ जा रहा है जैसे तेल कम हो जाने पर दीपक धीरे-धीरे बुझने लगता है।

चारुदत्त : (दुःख से) इस समय कौए कठोर शब्द कर रहे हैं। आँसू से भींगी हुई, धूल से रूखे अंगों वाली, श्मशान के फूलों से ढँकी लाल चन्दन लगी, वध के बाद पड़ी हुई मेरी देह को बलि की तरह खाने के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दोनों चाण्डाल : हट जाइये। सज्जनगण ! हट जाइये। काल का कुठार इसे मारेगा। साधु जन जैसे पक्षी इस सज्जनता के वृक्ष

चारुदत्त पर बैठा करते थे। आप इसे क्यों देखते हैं? अरे चारुदत्त! आ!

चारुदत्त : पुरुषों के भाग्य का परिवर्त्तन कौन सोच सकता है? मैं ही कैसी हालत में पहुंच गया हूँ? सारे शरीर पर लाल चंदन के हाथ के छापे मारे गये हैं। तिल, चावल और कुंकुम लगा है। मैं पुरुष नहीं, पशु बना दिया गया हूँ। (आगे देख कर) मनुष्यों का वैषम्य अद्भुत है। (करुणा से) नगरवासी इसकी निंदा करते हैं कि मेरा वध जैसा अपमान हो रहा है! उनकी आँखें भर-भर आ रही हैं। मेरी रक्षा करने में असमर्थ वे कहते हैं—तुम्हें स्वर्ग मिले।

चाण्डाल : दूर हटिये सज्जन। दूर हटिये। देखते क्या हैं? विसर्जन को ले जाया जाता इंद्रध्वज, गौ-प्रसव, नक्षत्र का गिरना और सज्जन की आपत्ति, इन चारों दृश्यों को नहीं देखना चाहिये।

एक व्यक्ति : अरे हाय-हाय! देखो-देखो। विधाता के खेल से उज्जयिनी के प्रमुख पुरुष चारुदत्त को वध के लिये ले जाते देख कर क्या आकाश रो रहा है? या बिना बादल के बिजली गिर रही है?

दूसरा : अरे गोह! न आकाश रो रहा है, न बिना बादल के बिजली गिर रही है यह तो स्त्रियों की आँखों से आँसू उमड़ रहे हैं। सभी मनुष्य रो रहे हैं; इतने आँसू गिरे हैं पथ की धूलि भी नहीं उड़ती।

चारुदत्त : (देख कर करुणा से) महलों की खिड़कियों से मुख निकाल कर स्त्रियाँ पनाले की तरह, आँसू गिराती—हाय चारुदत्त! हाय! कह रही हैं।

एक चाण्डाल : ओ चारुदत्त! यही घोषणा करने का स्थान है।

नगाड़ा बजाओ और राजनिर्णय को सुना दो।

दोनों चाण्डाल : सुनिये आर्य्यगण ! सुनिये ! यह सार्थवाह विनयदत्त का नाती, सागरदत्त का पुत्र आर्य्य चारुदत्त है। इस दुष्कृती ने क्षणभंगुर धन के लिये गणिका वसंतसेना को पुष्पकरण्डक उद्यान में ले जा कर गला घोंट कर मार डाला। यह गहनों के साथ पकड़ा गया और इसने स्वीकार भी कर लिया। इसलिये राजा पालक ने इसे मारने की आज्ञा दी है। यदि कोई और भी ऐसा लोक-विरुद्ध काम करेगा, तो राजा उसे भी इससे शिक्षा देते हैं।

चारुदत्त : (**सदु:ख स्वगत**) हमारा जो श्रेष्ठ कुल पहले अनेक यज्ञानुष्ठानों से पवित्र हो चुका है, और सभा तथा निमंत्रित मनुष्यों से भरे यज्ञमंदिरों की वेदध्वनियों से गूँज चुका है वही मेरा कुल मेरे मरने के समय इन पापी अयोग्य चाण्डालों द्वारा घोषणा-स्थल में आज पुकारा जा रहा है। (**ऊपर देख कर, कानों को मूँदकर**) हाय प्रिये ! वसंतसेने ! चंद्रमा की उज्ज्वल रशियों-सी उज्ज्वल दाँतों वाली! सुंदर कोपलों से होंठ वाली ! प्रिये ! अमृत का पान करके अब मैं अपयश का कैसा विष पी रहा हूँ ! कैसा असहाय हूँ !!

दोनों चाण्डाल : किनारे हो जाइये सज्जनगण ! किनारे हो जाइये ! गुणों की निधि सज्जनों के दुख को पार करने में पुल के समान रहने वाले चारुदत्त आज अलंकारहीन करके इस नगरी से बहुत दूर हटाये जा रहे हैं। संसार में सुखी और धनियों की तो सभी शुभ कामना करते हैं। पर विपत्ति में पड़े मनुष्यों के प्रिय करने वाले शायद ही कोई हो।

चारुदत्त : (**चारों ओर देख कर**) मेरे मित्र भी वस्त्र से मुँह ढँक कर मुझसे दूर हटे जा रहे हैं। जब धन होता है तब

पराये भी बंधु बन जाते हैं, पर विपत्ति में मित्र भी बंधु नहीं बनते।

चाण्डाल : जनता हट गई। राजमार्ग सूना हो गया। अब चारुदत्त को वध करने वाले समय-चिह्नों से ठीक कर ले आओ।

चारुदत्त : (**निश्वास ले कर**) मैत्रेय ! आज यह क्या हो गया ?

[**नेपथ्य में : हा तात ! हा प्रिय मित्र !**]

चारुदत्त : (**सुन कर करुणा से**) स्वाजाति-श्रेष्ठ ![1] मैं तुमसे कुछ दान लेना चाहता हूँ।

चाण्डाल : क्या हमको रोकना चाहते हो ?

चारुदत्त : पाप शांत हो ! पालक की तरह चाण्डाल अविचारी और दुराचारी नहीं हैं। मैं परलोक के लिये पुत्र का मुख देखना चाहता हूँ।

चाण्डाल : ऐसा ही करिये।

[**नेपथ्य में : हे तात ! हे पिता !**]

चारुदत्त : (**सुन कर सकरुण स्वर से**) स्वजाति-श्रेष्ठ ! मैं तुमसे कुछ दान लेना चाहता हूँ।

चाण्डाल : नगर-वासियो ! जरा पीछे हटो। राह दो। आर्य्य चारुदत्त अपने पुत्र का मुख देख लें ! (**नेपथ्य की ओर मुख करके**) आर्य्य ! इधर से। आ बालक ! आ !

[**बालक को ले कर विदूषक का प्रवेश**]

विदूषक : जल्दी करो ! जल्दी करो वत्स ! तुम्हारे पिता को वे मारने के लिये ले जा रहे हैं।

बालक : हा पिता ! हा तात !

विदूषक : हाय प्रिय मित्र ! अब तुम्हें कहाँ देखूँगा ?

चारुदत्त : (**पुत्र और मित्र को देख कर**) हा पुत्र ! हाय मैत्रेय ! (**करुणा**

---

१. अपनी जाति में मुख्य—चाण्डाल से कहा है।

से) हाय ! दारुण पीड़ा है ! मैं परलोक में सदा के लिये प्यासा रहूँगा। पुत्र का दिया पितृजल मेरी प्यास कैसे बुझा सकेगा ! मैं इस पुत्र को क्या दूँ ? (अपने अंगों पर आँख दौड़ा कर, जनेऊ देख कर) अभी यह तो है। बिना सुवर्ण और मोती का बना ब्राह्मणों का यह परम अलंकार है जिसके द्वारा देवता और पितरों का अंश दिया जाता है। (यज्ञोपवीत देता है।)

एक चाण्डाल : चल रे चारुदत्त, चल !

दूसरा चाण्डाल : अरे ! तुम बिना किसी सम्मान के आर्य्य चारुदत्त का नाम पुकार रहे हो ! उन्नति और अवनति में तो दिन और रात चलते ही हैं। वे कभी नहीं रुकते ? जवान, बंधन छूटी मस्त हथिनी की तरह दैव स्वच्छंद गति से चलता है। भाग्य की गति बड़ी दुर्निवार है ! झूठा दोष लगने के कारण आर्य्य चारुदत्त का कुल-नाम क्या प्रणाम कर के माथे पर धारण कर लेने के योग्य नहीं है ? राहुग्रस्त चंद्रमा क्या जनता से पूज्य नहीं होता ?

बालक : अरे रे चाण्डालो ! मेरे पिता को कहाँ ले जा रहे हो ?

चारुदत्त : (पुत्र से) कण्ठ में करवीर माला, कंधे में शूल और हृदय में शोक धारण किये मैं यज्ञ के बकरे की तरह कटने को वध्य-स्थान में इन चाण्डालों के पीछे-पीछे जा रहा हूँ।

चाण्डाल : बालक ! हम लोग चाण्डाल-कुल में जन्म ले कर भी चाण्डाल नहीं हैं ! जो अच्छे आदमियों को कष्ट देते हैं, वे ही पापी और चाण्डाल हैं।

बालक : मेरे पिता को कौन मारता है ?

चाण्डाल : चिरंजीव ! यह अपराध तो राजा की आज्ञा से हो रहा है, हमारे कारण नहीं।

बालक : मुझे मार डालो और पिता को छोड़ दो !'

चाण्डाल : चिरंजीव ! तुम दीर्घायु हो ! तुम धन्य हो !

चारुदत्त : (रोते हुए पुत्र को गले लगा कर) गरीब-अमीर सबके लिए यह पुत्र-स्नेह ही सब कुछ है। चंदन और खस में भी हृदय पर लेप लगाने पर क्या ऐसी शीतलता है ? ये तो मुझे मारने ले जा रहे हैं ?

विदूषक : भद्रमुखो ! प्रिय चारुदत्त को छोड़ कर बदले में मुझे क्यों नहीं मार डालते ?

चारुदत्त : पाप शांत हो !(देख कर स्वगत) आज समझ रहा हूँ। धन के सब मित्र हैं। (प्रगट) स्त्रियाँ कितनी रोती हैं !

चाण्डाल : दूर हटिये ! दूर हट जाइये ! रस्सी टूट जाने पर जैसे सोने का कलसा गिरता है, वैसे झूँठे कलंक के कारण जीवन की आशा खोये साधु पुरुष चारुदत्त जा रहे हैं ! क्या देखते हो ?

चारुदत्त : (करुणा-भरे स्वर से) चंद्रमा की उज्ज्वल किरणों-सी वसंतसेने !

दूसरा चाण्डाल : अरे, फिर घोषणा कर दो।

चाण्डाल : सुनो सज्जनो ! हम साधु चारुदत्त को वध करने ले जा रहे हैं ! इन पर स्त्री-हत्या का दोष लगाया गया है !

चारुदत्त : शकार के अभियोग की विपत्ति के कारण दरिद्रता तो कुछ नहीं, मैं 'स्त्री-घात' करने वाली हीन जाति में पहुँच गया हूँ ? और इसका फल है जीवन का अंत ! यह घोषणा मेरे हृदय को पीड़ित कर रही है। मैंने वसंतसेना को मारा है— मुझे यह सुनना पड़ेगा !

[प्रासाद के वृद्ध स्थावरक का प्रवेश]

स्थावरक : (घोषणा सुन कर विकलता से) क्या चारुदत्त कलंकित करके

मारे जा रहे हैं ! मुझे स्वामी शकार ने बेड़ी से जकड़ डाला है । अच्छा, चिल्लाऊँ । सुनिये आर्य्यगण ! सुनिये ! मैं पापी गाड़ी बदल जाने से वसंतसेना को जीर्णोद्यान पुष्पकरण्डक में ले गया । शकार ने उसे गला घोंट कर मार डाला, क्योंकि वह उसे नहीं चाहती थी । चारुदत्त ने उसे नहीं मारा है । अरे ! दूर होने से कोई मेरी बात नहीं सुनता ? मैं क्या करूँ ? महल पर से कूद पड़ूँ ? (**सोच कर**) इससे शायद आर्य्य चारुदत्त नहीं मारे जायें । इस अलिंद की पुरानी खिड़की से कूदूँ ! मेरा मरना उचित है न कि श्रेष्ठ पुरुषरूपी पक्षियों के आश्रय आर्य्य चारुदत्त का । यदि मैं यों मरूँगा तो मुझे स्वर्ग मिलेगा । (**कूद कर**) हा ! हा ! मैं मरा नहीं ! मेरी बेड़ी टूट गई ? तब घोषणा-स्थान ढूढूँ । (**देख कर, वहाँ जा कर**) अरे चाण्डाल ! रास्ता दो रास्ता !

दोनों चाण्डाल : अब कौन रास्ता ढूँढ रहा है ?

चेट : सुनिये ! वसंतसेना को गाड़ी बदल जाने से मैं जीर्णोद्यान पुष्पकरण्डक में ले गया था । शकार ने उसे प्रेम न करते देख गला घोंट कर मारा है, चारुदत्त ने नहीं ।

चारुदत्त : अरे ! बिना वर्षा के सूखे धान के लिये द्रोण[1] की भाँति मेरे काल के बंधन में फँसे रहने पर भी कौन आ गया ? सुना आपने ? सुना आप लोगों ने ? मैं मौत से नहीं डरा हूँ । डरा हूँ कि मेरा नाम कलंकित हो गया है । यदि मैं बिना कलंक मरता तो मुझे पुत्र-जन्म का-सा सुख मिलता । बिना कारण शत्रु बने उस दुर्बुद्धि नीच शकार ने मुझे स्त्री-हत्या का दोष लगाया है । वह विषैला बाण और चुभ रहा है ।

---

१. मेघ का नाम ।

दोनों चाण्डाल : स्थावरक ! क्या सच कहते हो ?

चेट : बिल्कुल सच ! मैं कहीं इस दुर्घटना के बारे में किसी से कह न दूँ, इसी डर से शकार ने मुझे बेड़ी डाल कर महल की नई वीथि में डाल दिया था।

शकार : (**प्रवेश करके हर्ष से**) घर में, शालि चावल का भात, मांश मिला कर, तीखे और खट्टे शाग के शाथ, दाल मिला कर, अच्छी मछली और खूब गुड़ मिला कर खाया है। (**कान लगा कर सुन कर**) जैशे पत्थर पर गिर कर कांशे का बर्त्तन खन-खन करता है, वैशे ही यह चाण्डालों का घोषणा-श्वर लगता है। वध के शमय की ऊँची आवाज़ और नगाड़े का गर्जन शुनाई दे रहा है। लगता है दरिद्र चारुदत्त वधश्थान पर ले जाया जा रहा है। देखूँ, क्योंकि शत्रु-विनाश शे मेरे हृदय को अत्यंत शंतोष होता है। कहते हैं, जो मरते शत्रु को देखता है उशे दूशरे जन्म में आँख का रोग नहीं होता। विष वृक्ष की गाँठ के छेद में घुशे कीड़े की तरह छेद खोजते शमय मैंने गरीब चारुदत्त का शत्यानाश ही कर दिया। अपने महल की नई वीथि की छत पर चढ़ कर अपना पराक्रम देखूँ। (**चढ़ कर और देख कर**) अरे ! इश नंगे चारुदत्त को वध के लिये ले जाते शमय इतनी भीड़ ? इतना कोलाहल ! जब हम जैशे श्रेष्ठ पुरुष वध के लिये ले जाये जायेंगे तब न जाने कितनी भीड़ होगी ! (**देख कर**) चारुदत्त नये बैल-शा शजा कर दक्षिण दिशा की ओर ले जाया जा रहा है। मेरे प्राशाद की नवीन वीथि के पाश घोषणा क्यों हुई और शमाप्त क्यों हो गई ? (**देख कर**) अरे ? श्थावरक चेट यहाँ नहीं है ? कहीं वह वहाँ गुप्त भेद न खोल दे ! उशे खोजूँ।

[उतर कर जाता है ।]

चेट : (**देख कर**) प्रभुओ ! यह आ गया वह ! देखिये वह आ गया !

दोनों चाण्डाल : हटो ! मार्ग दो ! द्वार बंद कर लो । चुप हो जाओ क्योंकि दुर्जन तीखे सींग वाला दुष्ट बैल शकार इधर आ रहा है ।

शकार : अरे, अरे ! राह दो । राह दो । (**पास जा कर**) पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! आओ चलें ।

चेट : अरे अनार्य्य ! वसंतसेना की हत्या करके तू तृप्त नहीं हुआ ? अब तो याचकों के कल्पवृक्ष आर्य्य चारुदत्त को भी मार डालना चाहता है ?

शकार : मैं रत्नकुंभ के शमान श्रेष्ठ हूँ । मैं श्त्री को नहीं मारता ।

सब : तुमने वसंतसेना को मारा है, चारुदत्त ने नहीं !

शकार : ऐशा कौन कह शकता है ?

सब : (**चेट को दिखा कर**) यह भला आदमी ।

शकार : (**धीरे से डरते हुए**) हा धिक ! हाय रे ! क्या मैंने श्थावरक चेट को ठीक शे नहीं बाँधा था ? इशने तो मेरा दुष्कार्य्य देखा है । शाक्षी है । (**सोच कर**) अच्छा ! (**प्रगट**) यह झूँठ बात है शज्जनो ! इस चेट ने शोने की चोरी की । मैंने इशे पकड़ा, पीड़ित किया, पीटा, और बाँधा भी है । अब यह मेरा शत्रु हो कर ऐशा कहता है । क्या यह शच है ? (**गुप्त रूप से चेट को कंकण दे कर मंद स्वर से**) पुत्रक ! श्थावरक ! चेट ! इशे ले कर मुझे निर्दोष प्रमाणित कर दे !

चेट : (**कंकण ले कर**) देखिये-देखिये स्वामियो ! यह सोना दे कर मुझ-से अन्यथा कहलवाना चाहता है ।

शकार : (**कंकण छीन कर**) यही वह शुवर्ण है, जिशके पीछे, मैंने

इशे बाँधा था ! (क्रोध शे) अरे चाण्डालो ! मैंने इशे शोने के खजाने में नियुक्त किया था और वहाँ चोरी करने पर मैंने इशे खूब पीटा। यदि मेरी बात पर भरोशा न हो तो इशकी पीठ खोल कर देखिये।

दोनों चाण्डाल : (देख कर) ठीक कहते हैं आप। चोट से संतप्त हो कर चेट झूठ कह रहा है।

चेट : हाय ! दासत्व इतना अधम है कि उस पर कोई विश्वास भी नहीं करता ? (करुणा से) आर्य्य चारुदत्त ! मुझमें बस इतनी ही सामर्थ्य थी !

चारुदत्त : (करुणा-भरे स्वर से) अरे विपत्ति-सागर में गिरे सज्जनों पर दया करने वाले ! अकारण आने वाले बंधु ! धर्मशील स्थावरक ! उठो ! मेरा उद्धार करने को आपके इतने कठिन प्रयत्न करने के बाद भी यदि दैव विरुद्ध है तो इसमें आपका क्या दोष ? आपने तो बंधु का सारा कार्य्य कर दिया !

चाण्डाल : स्वामी ! इसे निकालिये मार कर यहाँ से।

शकार : निकल यहाँ शे। (निकालता है।) अरे चाण्डालो ! विलंब क्यों करते हो ? इस चारुदत्त का वध करो।

दोनों चाण्डाल : बहुत जल्दी है तो आप ही मारिये न ?

रोहसेन : अरे चाण्डालो ! मुझे मार डालो। पिता को छोड़ दो !

शकार : पुत्र के शाथ इशे मारो।

चारुदत्त : यह मूर्ख सभी तरह के अनर्थ कर सकता है। जा बेटा ! माँ के पास जा !

रोहसेन : मैं जा कर करूँगा क्या ?

चारुदत्त: पुत्र ! माँ को ले कर आज ही तपोवन चले जाना। पुत्र ! पिता के दोष से कहीं तुम भी अकाल मृत्यु के गाल में न चले

जाओ। मित्र ! इसे ले जाओ।

विदूषक : मित्र ! इतना तो तुम जानते ही हो कि तुम्हारे बिना मैं किस तरह जियूँगा ?

चारुदत्त : मित्र ! जिसका जीवन अपने हाथ में है, उसे प्राण नहीं त्यागना चाहिये।

विदूषक : (स्वगत) यह अनुचित है। फिर भी प्रिय मित्र बिना जीना मेरे लिये असंभव लगता है। मैं यह बालक ब्राह्मणी को दे कर, प्रिय मित्र के रास्ते ही जाऊँगा। (प्रगट) मित्र ! मैं बालक को ले कर जाता हूँ।

शकार : अरे ! मैं कहता हूँ चारुदत्त को पुत्र के शाथ मारो।

[चारुदत्त भयभीत होता है।]

दोनों चाण्डाल : यह राजाज्ञा हमें नहीं मिली। बालक ! तुम जाओ। निकलो ! (निकालते हुए) यह तीसरा घोषणा का स्थान है। नगाड़ा बजाओ।

[फिर घोषणा करता है।]

चाण्डाल : स्त्री-हत्या के दोषी चारुदत्त का वध करने ले जाया जा रहा है !

शकार : (स्वगत) ये नगरवाशी क्यों इश पर विश्वाश करते ? (प्रगट) ब्राह्मण चारुदत्त ! ये पुरवाशी विश्वाश नहीं करते इशलिये तुम कहो कि तुमने ही वशंतशेना की हत्या की है।

[चारुदत्त चुप रहता है।]

शकार : अरे चाण्डाल गोह ! ब्राह्मण चारुदत्त नहीं बोलता। इशे इश डंडे शे नगाड़े की तरह पीट-पीट कर बुलवाओ।

चाण्डाल : (मारने की तैयारी करके) बोल चारुदत्त ! बोल !

चारुदत्त : (सकरुण) न मैं इस विपत्ति-सागर में डूबने से डरता हूँ,

न मुझे दुख ही है। मुझे अपयश की अग्नि ही भस्म कर रही है, जो सबके सामने कहना पड़ेगा कि मैंने प्रियतमा वसंतसेना को मारा है।

शकार : मारो इशे मारो ! वर्ना बोल !

चारुदत्त : हे नगरवासियो ! मैंने ही वसंतसेना को मारा है।

शकार : तुमने वशंतशेना को मारा है ?

चारुदत्त : हाँ !

एक चाण्डाल : आज वध की तुम्हारी बारी है।

दूसरा चाण्डाल : नहीं। तुम्हारी है।

एक चाण्डाल : तो आओ हिसाब लगा लें। (गिनते हैं।) यदि मेरी बारी है तो क्षण भर ठहर जाओ।

दूसरा चाण्डाल : क्यों ?

एक चाण्डाल : स्वर्ग जाते समय मेरे पिता ने कहा था कि पुत्र वीरक ! यदि वध की बारी तुम्हारी हो तो वध्य पुरुष को सहसा मत मार डालना।

दूसरा चाण्डाल : क्यों भला !

एक चाण्डाल : कभी-कभी कोई भला आदमी धन दे कर मरने आये को छुड़ा लेता है। कभी राजा के पुत्र पैदा हो जाता है, जिसकी प्रसन्नता में उत्सव होता है और सभी मारे जाने वाले छोड़ दिये जाते हैं। कभी हाथी छूट जाता है तो भगदड़ में वध्य पुरुष भी भाग निकलता है। कभी-कभी राज्य-परिवर्तन हो जाता है, जिससे सब बंदी छूट जाते हैं।

शकार : ऐ ! ऐ ! राज्य-परिवर्त्तन कैशा ?

चाण्डाल : अरे हम गिन रहे हैं कि आज वध करने की किसकी बारी है।

शकार : अरे ! चारुदत्त का वध शीघ्र करो।

[**यह कह चेट को पकड़ कर एकांत में खड़ा होता है ।**]

चाण्डाल : आर्य्य चारुदत्त ! यह अपराध राजा की आज्ञा से हो रहा है। हम चाण्डाल इसके उत्तरदायी नहीं हैं। जो याद करना हो याद कर लो।

चारुदत्त : मेरे भाग्य के दोष से राजपुरुष के वाक्यों से कलंकित मेरे धर्म में यदि कुछ प्रभाव हो तो वसंतसेना इंद्र के भवन से, या वह जहाँ भी हो। मेरे कलंक को हटाने आज आये ! बोलो ! मुझे कहाँ चलना है !

चाण्डाल : (**आगे दिखा कर**) यह दक्षिण श्मशान दिखाई दे रहा है, जिसे देख कर वध्य पुरुष जल्दी ही मर जाते हैं। देखो ! शरीर ऊपर उठा कर स्यार शूल पर आधी लटकी देह को खाने के लिये खींच-फाड़ कर रहे हैं; लाश का मुँह खुला है, दाँत दीख रहे हैं; ऐसा लगता है जैसे भयानक हास्य हो !

चारुदत्त : हाय ! मैं अभागा मारा गया ! (**आवेग से बैठ जाता है ।**)

शकार : मैं अभी नहीं जाऊँगा। चारुदत्त को मरते देख लूँ। (**घूम कर और देख कर**) बैठ क्यों गया ?

चाण्डाल : क्या डर गये चारुदत्त ?

चारुदत्त : (**सहसा उठ कर**) मूर्ख ! मैं मृत्यु से नहीं कलंक से डरता हूँ।

चाण्डाल : आर्य्य चारुदत्त ! आकाश में रहने वाले चंद्रमा और सूर्य्य पर भी अस्त होने की विपत्ति आती है। फिर पैदा होने वाले पशु-पक्षी और मृत्यु से डरने वाले मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? संसार में कोई उठ कर गिरता है, कोई गिर कर उठता है। पताका के उठने-गिरने की तरह लाश भी शूल पर उठती-गिरती दिखाई देती है। इसे समझ कर आत्मा को धैर्य्य

दो। (दूसरे चाण्डाल से) यह चौथा घोषणा-स्थान है। आओ घोषणा करो।

[फिर घोषणा करते हैं।]

स्त्री-हत्या के कारण आर्य्य चारुदत्त को वध किया जायेगा !

चारुदत्त : हा प्रिये ! हाय वसंतसेने ! तुम चंद्रकिरण-सी निर्मल थीं !

[आकुल वसंतसेना और भिक्षु का प्रवेश]

भिक्षु : अस्थान में थकी-गिरी वसंतसेना को परिचर्य्या करके मैंने ठीक कर दिया। अब इसे ले जाते हुए मैं अनुगृहीत हो गया। उपासिके ! तुम्हें कहाँ ले जाऊँ ?

वसंतसेना : आर्य्य चारुदत्त के घर। जैसे कुमुदिनी को चंद्रमा भाता है, वे मुझे अच्छे लगते हैं।

भिक्षु : (स्वगत) किधर से चलूँ ? (सोच कर) राजमार्ग से ही चलें। उपासिके ! यह राजपथ है। (सुन कर) यह घोर कोलाहल क्यों सुनाई दे रहा है ?

वसंतसेना : (आगे देख कर) यह आगे इतनी भीड़ क्यों है ? आर्य्य ! पता लगाइये क्या बात है ! अत्यंत भार से दबी धरती की तरह भीड़ के कारण उज्जयिनी एक ओर को उठ गई है !

चाण्डाल : यह पाँचवाँ घोषणा-स्थान है। नगाड़ा बजा कर घोषणा करो। सुनो ! सुनो ! वसंतसेना की हत्या करने के कारण आर्य्य चारुदत्त को राजाज्ञा से आज वध किया जा रहा है ! अरे चारुदत्त ! प्रहार की प्रतीक्षा करो। डरो मत ! शीघ्र ही सब समाप्त हो जायेगा !

चारुदत्त : भगवती देवी !

भिक्षु : (सुन कर घबरा कर) उपासिके ! तुम्हें चारुदत्त ने मारा है,

इसलिये उसे वे सूली देने ले जा रहे हैं।

वसंतसेना : (**घबरा कर**) क्या मुझ अभागिनी के कारण आर्य्य चारुदत्त मारे जा रहे हैं ! जल्दी चलो। जल्दी !

भिक्षु : जल्दी करो, जल्दी ! बुद्धोपासिका ! शीघ्रता करो। आर्य्य चारुदत्त का जीवन बचाने को। सज्जनो ! रास्ता दो, रास्ता !

वसंतसेना : रास्ता दो रास्ता; हटो ! हटो !

चाण्डाल : आर्य्य चारुदत्त ! आप राजा की आज्ञा से मारे जा रहे हैं, जो कुछ याद करना हो कर लें।

चारुदत्त : अब क्या है ? धर्म में यदि प्रभाव हो तो वसंतसेना मुझे कलंक से बचावे !

चाण्डाल : (**तलवार खींच कर**) आर्य्य चारुदत्त ! ऊपर वक्ष और नीचे पीठ करके सीधे लेट जाओ ! एक ही तलवार के वार से हम तुम्हें स्वर्ग पहुँचा देंगे।

[**चारुदत्त लेट जाता है।**]

[**चाण्डाल प्रहार करना चाहता है हाथ से तलवार गिर पड़ती है।**]

चाण्डाल : हाय ! यह क्या ? क्रोध से खिंची, मुट्ठी में भींची हुई यह वज्र-सी कठोर और भीषण तलवार पृथ्वी पर क्यों गिर गई ? लगता है चारुदत्त की मृत्यु नहीं होगी। सह्यनिवासिनी देवी ! प्रसन्न हो ! प्रसन्न हो ! चारुदत्त मृत्यु के मुख से छूट जाये ! यह चाण्डाल-कुल आज इसी तरह तुमसे अनुगृहीत हो जाये।

दूसरा चाण्डाल : राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य्य करें।

एक चाण्डाल : यही सही।

[**दोनों चाण्डाल चारुदत्त को सूली पर चढ़ाना चाहते हैं।**]

चारुदत्त : यदि धर्म में प्रभाव हो तो वसंतसेना मुझे कलंक से बचाये।

भिक्षु और वसंतसेना : (देख कर) सज्जनो ! ऐसा न करो ! ऐसा न करो ! सज्जनो ! मैं ही वह अभागिनी हूँ जिसके कारण वे मारे जा रहे हैं !

चाण्डाल : (देख कर) केश कंधों पर खुले हैं, हाथ उठाये 'ऐसा न करो, ऐसा न करो', कहती हुई यह कौन जल्दी-जल्दी इधर ही आ रही है ?

वसंतसेना : आर्य्य चारुदत्त ! यह क्या हुआ ? (उसके हृदय पर गिर जाती है।)

भिक्षु : आर्य्य चारुदत्त ! क्या हो गया यह ? (चरणों पर गिर जाता है।)

चाण्डाल : (भय से पास आ कर) कौन ? वसंतसेना ? भाग्य से ही हमने सज्जन चारुदत्त को नहीं मारा।

भिक्षु : (उठ कर) अरे चारुदत्त जीवित हैं !

चाण्डाल : सौ वर्ष तक जियें।

वसंतसेना : (प्रसन्नता से) हाय मैं जी गई। हाय मैं जी उठी।

चाण्डाल : तब यह सब यज्ञशाला में गये राजा से कह आयें।

[प्रस्थान]

शकार : (वसंतसेना को देख कर डर से) हाय ! यह गर्भदाशी कैशे जी उठी ? मेरा तो दम निकल रहा है। अच्छा। भाग चलना ही ठीक है।

[भागता है।]

चाण्डाल : (आ कर) हम लोगों को राजा की ओर से आज्ञा मिली है कि जिसने वसंतसेना को मारा हो उसी को मारो। चलो ! राजा के साले को खोजें।

[दोनों का प्रस्थान]

चारुदत्त : (आश्चर्य्य से) मुझ पर प्रहार करने को हथियार तक उठाया गया। मौत के मुँह में चला गया। बिना वर्षा के सूखे धान पर द्रोण-वृष्टि-सी यह कौन आ गई ? (देख कर) क्या यह दूसरी वसंतसेना है ? या वही स्वर्ग से उतर आई है ? या मेरा भ्रांत मन इस स्त्री को वसंतसेना समझ रहा है। या वह नहीं मरी ! वही सामने खड़ी है ? या यह मेरी रक्षा करने स्वग से आई है ? या यह उसी से मिलती-जुलती कोई दूसरी स्त्री तो नहीं ?

वसंतसेना : (गीली आँखों से उठ कर चरणों पर गिर कर) आर्य्य चारुदत्त ! मैं वही पापिनी वसंतसेना हूँ, जिसके कारण आप इस बुरी हालत में पहुँचे।

[नेपथ्य में : आश्चर्य्य है, अद्‌भुत ! वसंतसेना जीवित है। (सब यही कहते हैं।)]

चारुदत्त : (सुन कर, सहसा उठ कर स्पर्श-सुख अनुभव करके, आँखें मूँदे, प्रसन्नता से गद्‌गद् स्वर से) प्रिये ! तुम वसंतसेना हो ?

वसंतसेना : हाँ, मैं वही हतभागिनी हूँ !

चारुदत्त : (देख कर प्रसन्नता से) क्या तुम वही वसंतसेना हो ? (हर्ष से) मैं मृत्यु के मुख में था। आँसुओं से स्तनों को भिगोती संजीवनी बूटी की तरह तुम कहाँ से आ पहुँची ? प्रिये ! वसंतसेने ! तुम्हारे लिये ही यह देह जा रही थी, तुम्हीं ने बचा ली ! प्रिय-मिलन में कितना सुख है ! मर कर कौन जी सका है फिर ? वसंतसेने ! विवाह का-सा यह लाल वस्त्र है, लाल माला है और यह वध के नगाड़ों की ध्वनि विवाह की-सी ध्वनियाँ हो गईं।

वसंतसेना : इतनी उदारता भी क्या कि यह हाल कर लिया ?

चारुदत्त : प्रिये ! यही कि मैंने तुम्हें मार डाला ! पुराने वैर से नारकीय शकार ने मुझ पर अपना दोष थोप दिया । मुझे कलंकित किया ।

वसंतसेना : (**दोनों कान बंद कर**) ऐसा नहीं हो सकता। उसी राजा के साले शकार ने मुझे मारा था ।

चारुदत्त : (**भिक्षु को देख कर**) यह कौन है ?

वसंतसेना : उस दुष्ट शकार ने मुझ मारा और इन साधु पुरुष ने मेरी रक्षा की ।

चारुदत्त : अकारण ही बंधु बनने वाले आप कौन हैं ?

भिक्षु : आर्य्य! आप मुझे नहीं पहँचानते ? मैं आपके पाँव दबाने वाला संवाहक हूँ! जुआरियों ने जब मुझे पकड़ा तो इसी उपासिका वसंतसेना ने मुझे आपका अपना समझ कर अपना गहना दे कर मुझे खरीद लिया । उसी जूए के दुःख से मैं श्रमण हो गया । यह आर्य्या की गाड़ी बदल जाने से पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में पहुँच गई और वहाँ उस दुष्ट शकार ने जब देखा कि यह उसे नहीं चाहती तो जबरन गला घोंट कर इसे मारा । यह मैंने स्वयं देखा ।

[**नेपथ्य में कोलाहल : दक्ष-यज्ञ विनाशक वृषभध्वज महादेव की जय !**
शत्रु-विनाशक क्रौञ्च पर्वत-विदारणकारी कार्त्तिकेय की जय !
प्रधान शत्रु पालक को मारने व ले आर्य्यक ऐसी सम्पूर्ण
पृथ्वी को जीत कर जयी हों ! शुभ्र कैलाश
जिसकी पताका है उस विशाल पृथ्वी
पर जयशील हों !]

शर्विलक : (**सहसा प्रवेश कर**) मैं, दुष्ट राजा पालक को मार कर, आर्य्यक का राज्याभिषेक कर, उसकी आज्ञा का पालन करके दुःख में पड़े चारुदत्त का उद्धार करूँगा। सिद्धों ने ठीक कहा

था। भाग्य का उत्कर्ष हुआ। सेना और मंत्रियों से रहित उस दुष्ट पालक का वध करके, नगरवासियों को धैर्य्य धारण कराके, इन्द्र के राज्य की भाँति, संसार का श्रेष्ठ राज्य, शत्रु पालक का सारा राज्य, आर्य्यक ने प्राप्त कर लिया ! (**आगे देख कर**) आर्य्य चारुदत्त को यहीं होना चाहिये ! यहीं भीड़ है ! राजा आर्य्यक का राज्य-प्रारंभ आर्य्य चारुदत्त की जीवन-रक्षा से सफल हो जाये ! (**शीघ्र पहुँच कर**) घातको ! हटो ! (**देख कर हर्ष से**) क्या वसंतसेना और आर्य्य चारुदत्त जीवित हैं ? हमारे स्वामी आर्य्यक की इच्छा पूर्ण हो गई। सौभाग्य से गुण (रस्सी) से बँधी नैया की तरह सुशीला प्रियतमा वसंतसेना ने आपत्ति-रूपी महासागर से चारुदत्त को पार करा दिया। राहु-ग्रहण से मुक्त चंद्र की भाँति, प्रिया के साथ चारुदत्त को बहुत दिन बाद देख रहा हूँ। मैं महापापी ! कैसे इनके पास चलूँ ? सरलता सर्वत्र फबती है। (**सामने आ कर हाथ जोड़ कर**) आर्य्य चारुदत्त !

चारुदत्त : आप कौन हैं ?

शर्विलक : जिसने आपके घर में सेंध लगा कर धरोहर चुरा ली थी। मैं वही महापाप करने वाला, आपका शरणागत हूँ।

चारुदत्त : मित्र ! ऐसा क्यों कहते हो ? यह तो मेरे लिये प्रेम प्रमाणित हुआ ! (**गले लगाता है।**)

शर्विलक : सज्जन आर्य्यक ने, कुल और मान की रक्षा करते हुए, यज्ञशाला में बैठे दुष्ट पालक को पशु की तरह मार डाला।

चारुदत्त : अरे ! क्या ?

शर्विलक : कुछ दिन पहले जो आपकी गाड़ी में चढ़ कर आपकी शरण गया था, उसी आर्य्यक ने विशाल यज्ञ-भूमि में पशु की

तरह पालक को मार डाला ।

चारुदत्त : शर्विलक ! वही आर्य्यक, जिसे अकारण ही घर से निकाल कर पालक ने बाँध कर कारागार में डाल दिया था ? वही जिसे आपने छुड़ाया था ?

शर्विलक : हाँ, वही ।

चारुदत्त : बड़ी अच्छी खबर है ।

शर्विलक : उज्जयिनी में राज्य पाते ही मित्र आर्य्यक ने वेणा नदी के किनारे बसी कुशावती नगरी का राज्य आपको दिया है । मित्र के पहले प्रम को स्वीकार करिये । (**घूम कर**) अरे ! राजा के साले धूर्त्त शकार को पकड़ लाओ ।

[**नेपथ्य में—जैसी शर्विलक की आज्ञा ।**]

शर्विलक : आर्य्य ! राजा आर्य्यक ने आपसे कहा है कि यह राज्य मैंने आपके गुणों के कारण पाया है, आप ही इसका उपभोग करिये ।

चारुदत्त : मेरे गुणों के कारण ?

[**नेपथ्य में—अरे ! राजा के साले शकार ! आ ! आ ! अब अपनी दुष्टता का फल भोग !**]

[**भुजाएँ पीछे बाँध कर शकार को शर्विलक के अनुचर लाते हैं ।**]

शकार : हाय ! भय शे मैं उच्छृंखल गधे-शा दूर भाग गया । पर कटखने कुत्ते की तरह बाँध कर फिर ले आया गया हूँ । (**दिशाओं की ओर देख कर**) चारों ओर शे यही आवाज़ आ रही है कि राजा के शाले को बांधो ! हाय मैं निश्शहाय किश की शरण में जाऊँ ? (**सोच कर**) विपत्तियों में रक्षा करने वाले उशी चारुदत्त का शरणागत होता हूँ । (**पहुँच कर**) आर्य्य चारुदत्त ! रक्षा करो ! रक्षा करो !

[**चरणों पर गिरता है ।**]

[नेपथ्य में—आर्य्य चारुदत्त ! हटो, हटो ! इसे हटा दो ! हम इसे मार डालेंगे ।]

शकार : (चारुदत्त से) अशहायों के रक्षक ! मुझे बचाओ !

चारुदत्त : (दया से) शरणागत का भय दूर हो !

शर्विलक : (आवेग से) अरे, इसे चारुदत्त के पास से दूर हटाओ । (चारुदत्त से) कहिये ! इस पापी को क्या दण्ड दें ? इसे बाँध कर खींचा जाये ? या कुत्ते छुड़वा दें इस पर ? या सूली पर चढ़वा दें ! आरे से चिरवा दें इसे ?

चारुदत्त : क्या जो मैं कहूँगा वही माना जायेगा ?

शर्विलक : निश्चय ! निस्संदेह !

शकार : श्वामी ! प्रभु ! चारुदत्त ! शरणागत हूँ । रक्षा करो । मेरी रक्षा करो ! अपने योग्य कार्य्य करो ! मैं फिर ऐशा बुरा काम नहीं करूँगा ।

[नेपथ्य में—अरे मार डालो इस ! इसे पापी के जीने की जरूरत ही क्या है ?]

[वसंतसेना चारुदत्त के कण्ठ से वध-समय की माला निकाल कर शकार पर फेंकती है ।]

शकार : गर्भदाशी पुत्री ! प्रशन्न हो । प्रशन्न हो । फिर कभी नहीं मारूँगा । रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो !

शर्विलक : अरे हटाओ ! आर्य्य चारुदत्त ! आज्ञा दीजिये । इस पापी के साथ क्या व्यवहार किया जाये ?

चारुदत्त : जो कहूँगा, वही होगा ?

शर्विलक : निस्संदेह ।

चारुदत्त : सच ?

शर्विलक : नहीं तो क्या ?

चारुदत्त : यही बात है तो इसे शीघ्र……

शर्विलक : मार डाला जाये ?

चारुदत्त : नहीं-नहीं, छोड़ दीजिये ।

शर्विलक : क्यों ?

चारुदत्त : अपराधी शत्रु भी यदि शरणागत हो जाये तो उसे शस्त्र से मारना अनुचित है ।

शर्विलक : यह बात है । तो क्या कुत्तों को खिलवा दिया जाये इसे ?

चारुदत्त : नहीं । इसे उपकार कर के निर्बल कर दो ।

शर्विलक : अरे आश्चर्य्य है । आर्य्य ! कहिये न क्या करूँ ?

चारुदत्त : इसे छोड़ दीजिये !

शर्विलक : छोड़ दो ।

शकार : हाय फिर जी गया ।

[**अनुचरों के साथ प्रस्थान ।**]

[**नेपथ्य में कोलाहल ।**]

[**नेपथ्य में फिर स्वर—यह आर्य्य चारुदत्त की वधू आर्य्या धूता, कदम-कदम पर आँचल पकड़ते बालक को दूर हटाती, रोते हुए मनुष्यों से रोकी जाती हुई जलती आग में प्रवेश कर रही है ।**]

शर्विलक : (**सुन कर नेपथ्य की ओर देख कर**) चंदनक ! चंदनक क्या है यह !

चंदनक (**आ कर**) क्या आप नहीं देखते आर्य्य ! राजप्रासाद के दक्षिण में बड़ी भीड़ उमड़ रही है । आर्य्या धूता अग्नि में प्रवेश कर रही हैं । मैंने उनसे कहा कि आर्य्ये ! अग्नि-प्रवेश का दुस्साहस न करिये ; आर्य्य चारुदत्त जीवित हैं । किंतु दुख से आकुल होने के कारण वे सुनती कब हैं ? ऐसे में कौन विश्वास करता है ?

चारुदत्त : (**घबरा कर**) हाय प्रिये ! मैं तो जी रहा हूँ । तुम यह क्या कर रही हो ? (**ऊपर देख कर लंबी सांस ले कर**) ओ पवित्र

चरित्र प्रिये ! धूते ! हालाँकि तुम्हारा सती का-सा यह व्यवहार इस पृथ्वी पर रहने के योग्य नहीं है, स्वर्ग के ही योग्य है, फिर भी हे पतिव्रते ! पति को यहीं छोड़ कर तो स्वर्ग जाना तुम्हारे लिये उचित नहीं।

[मूच्छित हो जाता है।]

शर्विलक : यह घोर प्रमाद हुआ। आर्य्या धूना के पास शीघ्र चलना चाहिये। और यहाँ आर्य्य मूच्छित हो गये हैं ! हाय ! अब तो सब प्रयत्न बेकार होता लगता है।

वसंतसेना : धैर्य्य धरें। वहाँ चल कर धूता को रोकिये। वह अधीर हो कर न मर जाये।

चारुदत्त : (चैतन्य हो कर, सहसा उठ कर) हाय प्रिये ! कहाँ हो ! मेरी बात का उत्तर दो !

चंदनक : इधर आर्य्य, इधर आइये।

[सब चलते हैं।]

[निर्दिष्ट स्थान पर धूता, वस्त्र खींचते रोहसेन, विदूषक और रदनिका का प्रवेश]

धूता : (रोती हुई) पुत्र ! मुझे छोड़ दे ! विघ्न मत डाल ! मैं आर्य्यपुत्र के अमङ्गल को सुनने से डरती हूँ।

[उठ कर आँचल छुड़ा कर आग की ओर बढ़ती है।]

रोहसेन : आर्य्ये ! माँ ! मुझे कौन रखेगा ? तुम्हारे बिना मैं कैसे जिऊँगा ? (फिर दौड़ कर आँचल पकड़ लेता है।)

विदूषक : ऋषियों ने आप जैसी ब्राह्मणी को पतिवियुक्त होने पर चितारोहण पाप कहा है।

धूता : पाप ही अच्छा, पति का अमङ्गल तो नहीं सुनूँगी।

शर्विलक : (आगे देख कर) आर्य्या शीघ्र अग्नि में प्रवेश कर रही हैं।

अतः जल्दी आइये, जल्दी आइये।

[चारुदत्त जल्दी चलता है।]

धूता : रदनिके ! बालक को पकड़, तब मैं इच्छा से अग्नि में प्रवेश करूँ।

चेटी : (करुणा से) मैं यही कहने वाली थी कि आप ही इसे सँभालें।

धूता : (विदूषक से) आर्य्य ! आप ही इस बालक को पकड़ें।

विदूषक : (उद्वेग से) इच्छित सिद्धि के लिये ब्राह्मण को आगे करना चाहिये। आपसे पहले इसी लिये मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा।

धूता : क्या दोनों ने मेरी बात नहीं मानी ? (बालक को गले लगा कर) पुत्र ! हम लोगों को तिलोदक[1] देने को तू अपनी रक्षा कर ले। तेरे भी मर जाने पर तो हमारी इच्छाएँ व्यर्थ रह जायेंगी। (लंबी साँस ले कर) आर्य्यपुत्र भी तेरी रक्षा नहीं करेंगे।

चारुदत्त : (सुनते हुए सहसा पहुँच कर) मैं ही बालक की रक्षा करूँगा।

[बालक को उठा कर हृदय से लगाता है।]

धूता : (देख कर) अरे यह तो आर्य्यपुत्र का स्वर है ! (अच्छी तरह देख कर प्रसन्नता से) मेरे सौभाग्य ! यह तो आर्य्यपुत्र हैं। मेरे भाग्य ! कितना अद्भुत !

बालक : (देख कर हर्ष से) पिता मुझे गले से लगा रहे हैं। (धूता से) आर्य्या ! अब तो प्रसन्न हो ! देखो पिता मेरी रक्षा कर रहे हैं। (फिर लिपट जाता है।)

चारुदत्त : (धूता से) प्रेयसि ! पति के जीवित रहते यह कैसा कठोर कार्य्य कर रही थीं ? सूर्य्यास्त हुए बिना ही कमलिनी क्यों आँखें मूँद रही थी ?

---

१. तर्पण।

धूता : आर्य्यपुत्र ! वह कमलिनी अचेतन से चुम्बित हो रही थी।

विदूषक : (देख कर सहर्ष) अहा ! मेरी आँखें ही देख रही हैं। प्रिय मित्र ! सती धूता का प्रभाव है। न अग्नि प्रवेश करने का यत्न होता, न होता प्रिय से मिलन ही। (चारुदत्त से) प्रिय मित्र ! जय हो ! तुम्हारी जय हो !

चारुदत्त : आओ मैत्रेय !

[आलिंगन करता है।]

चेटी : अहा ! कैसा शुभावसर है। आर्य्य ! प्रणाम !

[चारुदत्त के चरणों पर गिरती है।]

चारुदत्त : (पीठ पर हाथ रख कर) उठ ! रदनिके ! उठ !

[उठाता है।]

धूता : (वसंतसेना को देख कर) भाग्य से ही बहिन हुई मेरी ! अच्छी तो हो।

वसंतसेना : अब तो मुझे सुख ही सुख है।

[दोनों आलिंगन करती हैं।]

शर्विलक : भाग्य से आर्य्य ! सारे सुहृदों के साथ बच गये !

चारुदत्त : आपकी कृपा से।

शर्विलक : आर्य्ये ! वसंतसेने ! राजा प्रसन्न हो कर आपको अपनी वधू बनाते हैं ![1]

वसंतसेना : कृतार्थ हो गई आर्य्य !

शर्विलक : (वसंतसेना का घूँघट खींचता है। फिर चारुदत्त से) आर्य्य ! इस भिक्षु का क्या हो ?

चारुदत्त : क्या चाहते हैं भिक्षु ?

---

१. वधू—बहू। गणिका अब कुललक्ष्मी बन गई। उसकी इज्जत बढ़ गई।

भिक्षु : ऐसी नश्वरता देख कर मेरा तो प्रव्रज्या में दुगना विश्वास हो गया है ।

चारुदत्त : मित्र ! इनका संकल्प पक्का है । इन्हें पृथ्वी के सारे विहारों का कुलपति[1] बना दीजिये ।

शर्विलक : जैसा आर्य्य चाहें ।

भिक्षु : अच्छी बात है । ठीक ही है ।

वसंतसेना : अब मैं जी गई ।

शर्विलक : स्थावरक को क्या होना चाहिये !

चारुदत्त : हे सुवृत्त[2] ! इसे दासत्व से मुक्त कर दो । वे चाण्डाल सारे चाण्डालों के अधिपति हो जायें । चंदनक सबसे प्रधान सेनापति बने । और राजा का साला जैसे पहले था, वैसे ही अब भी रहे ।

शर्विलक : ऐसा ही होगा आर्य्य ! परंतु शकार को मारूँगा ।

चारुदत्त : शरणागत को अभयदान दिया जाता है !

शर्विलक : अच्छी बात है । कहिये और आपका क्या प्रिय करूँ ?

चारुदत्त : क्या अभी और प्रिय करना बाकी है ? मेरे चरित्र पर वसंतसेना को मारने का जो कलंक लगा था वह दूर हो गया । मैंने शरणागत शकार की रक्षा कर दी । शत्रुओं का जड़ से विध्वंस करके मित्र आर्य्यक पृथ्वी का शासन कर रहे हैं । प्रिया वसंतसेना फिर मिल गई । और आप जैसे मित्र मिले हैं । अब बाकी ही क्या है जो आपसे माँगूँ ? विधाता तो कूँए के यंत्र में लगी छोटी घटी की तरह दो विरोधों की उन्नति-अवनति में संसार की गति दिखाते हुए खेल किया करता है । किसी को

---

१. अधिपति—चांसलर (Chancellor) या पोप (Pope) जैसा ।

२. अच्छे काम करने वाले ।

गरीब बना कर घृणित कर देता है ; किसी को धन दे कर सम्मान दिलाता है।

फिर भी यह भरत वाक्य हो—

हों प्रचुर दुग्धशालिनी गाय, हो वसुंधरा यह
शस्य-श्यामला धान्य पूर्ण,
बरसें घन अपने समयों पर, औ' बहे निरंतर
सुखद वायु, दुख करे चूर्ण !
इस सकल लोक के प्राणी सुख का अनुभव करें
प्रसाद भूरि,
अपने अभिमत जो अनुष्ठान हैं ब्राह्मण उनको
निरत करें, दुख रहें दूर।
हों लक्ष्मीवान् समस्त साधु सज्जन गण
करते पुण्य कर्म्म !
कर शत्रु नाश रक्षा पृथ्वी की करें नृपति
ले ध्येय धर्म्म !

[सबका प्रस्थान]

[संहार नामक दसवाँ अङ्क समाप्त]

★